अमरित की बरखा

विमला ठकार

अमरित की बरखा

[विमला ठकार की कविताएँ]

विमला ठकार

संकलन एवं सम्पादन
श्रेयस् कारीआ

विमल प्रकाशन ट्रस्ट

अमरित की बरखा (विमला ठकार की कविताएँ)

Amrit Ki Barkha [Poems by Vimala Thakar]

© विमल प्रकाशन ट्रस्ट - संतकृपा, १०३, रत्नम् टावर, जजीहा बंगलो रोड, बोडकदेव, अहमदाबाद

प्रथम आवृत्ति : रामनवमी, 2014

प्रत : 1000

पृष्ठ : 36 + 412 = 448

किमत : Rs. 250-00

प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान : विमल प्रकाशन ट्रस्ट
वाणियावाडी, स्ट्रीट नं. 9,
राजकोट - 360 001, गुजरात
फोन / फेक्स : 0281-2365279
सेल फोन : +91 99255 29096, +91 98254 16769
E-mail : vimalprakashantrust@yahoo.com

आवरण : जयेशभाई हिराणी
के. क्रिअेशन ग्राफिक्स, राजकोट

मुद्रक : वासुकि प्रिन्टिंग प्रेस
12/26, विजय प्लोट,
गोडाउन रोड,
राजकोट - 360 002
दूरभाष : 0281-2468113

हरिः ॐ

विमल स्तुति

वन्दे सर्वेश्वरिम्
सर्जन चक्रधारिणीं
सहजधर्म प्रवर्तिनीं
समाधि चरण चारिणीं
तुरिय शील शालिनीं
त्रिभुवन विहारिणीं

धवल सत्योज्जवल ललाटां
प्रेम कुमकुम शोभिनीं

शिव शावक संभ्रम मृगनयनां
शिवकंठ राजित नागद्वयां
निज कस्तूर्यर्पित गन्धं प्रोल्लसितां
भाव दर्शन धारिणीं
अङ्ग राग दिव्योज्जवलां
मणीमाणिक्य शोधितौज्जवल्यां

मित्र रश्मि मुकुट मण्डितां
सकल कला ज्योत्स्ना प्रावरणीं
जन्म मृत्यु कुण्डल सुशोभितां
भक्ति नासिका नाद ग्रीवा समलांकृता
कर्म बाहुधरां मौन जंऽघा दिव्यरूपां

भावासुर कारागार मोचित
कामासुर कारागार मोचित
प्रेम स्वरूपा वन्दे सर्वेश्वरिम्

संपादकीय निवेदन

'अमरित की बरखा' अब छपाई के अन्तिम चरण में है तब मन स्मृतिओं से भरा है । 1989 ईसवी में ड़लहौज़ी पहलीबार जाना हुआ । नगाधिराज हिमालय को श्रोता मानकर अपनी कविता सुनाते रहता था । दीदीमाँ के साथ यह बात चली तो उन्हों ने कहा - ''हमारी रचनाएँ सुनो, कविराज !'' तब से जब कहीं मौका मिले - आबू, ड़लहौज़ी, माधवपुर या हमारे घर राजकोट में - हमारा दो व्यक्ति कवि सम्मेलन शुरु होता था । एकबार आबू में मेरी कविताओं का अंग्रेज़ी अनुवाद करके पास में बैठी श्रीलंका की बहन नित्याजी को सुनाने लगे । तो कभी 'यह शब्द ठीक नहीं है' ऐसा करके सुधार देतीं । मुग्ध होकर मैं अपनी कविता सुनाता और अंतर उंडेलकर दीदीमाँ अपनी कविता पढ़कर-गाकर सुनातीं ।

एक दशक ऐसे ही बीत गया । 1999 ईसवी में आबू में एक बार करबद्ध प्रार्थना की कि आपकी कविताओं को छापने की अनुमति दीजिये । तब रोक दिया और 20 जून, 2007 के रोज स्वयं लिखित पत्र में जो छापना हो वह छापने की संमति भेज दी ! 2009 में विमलाजी का शरीर शान्त हुआ और बहुत कुछ डाँवाडोल हुआ !! विमल वाङ्मय की सेवा भीतर और बाहर की स्थिरता बनाये हुए चलती रही । 1989 से शुरु हुआ संग्रह और समृद्ध होता गया । 2011 से कुछ आकार बँधने लगा । धीरे धीरे 'अमरित की बरखा' होने लगी, जो आगे चलकर इसका शीर्षक बन गया ! यह भाषान्तरित कविताएँ नहीं है । यह मूल रचनाएँ है जो इसकी विशेषता है । कुछ मराठी कविताओंका हिन्दी भाषान्तर स्वयं विमलाजी ने किया है ।

यह सम्पादन का अवसर मुझ पर ईश्वर का वरदान बन कर आया है । यह कार्य सचमुच आसान नहीं था। असीम धीरज बनाये रखने में बहुत लोगों ने सहयोग किया है । माताजी-पिताजी के आशीर्वाद सदैव रहे हैं । श्री जयेशभाई हिराणी ने सभी मुखपृष्ठों की तरह इसको भी अपनी कल्पना से सजाया है । वासुकि प्रिन्टिंग प्रेस के श्री कमलेशभाई चावड़ा का और उनकी पूरी टीम का भी स्मरण रहता है । मुखपृष्ठ चित्र के लिए नागपुर के बुझुर्ग श्री गजाभाउ भोसेकरजी का धन्यवाद करता हूँ । तीर्थरूप मधुवंतीताई दांडेकर (पूना)ने मराठी प्रुफ देखने में मदद की उसे मैं बहुत आदर के साथ यहाँ स्मरण करता हूँ । अंग्रेज़ीका प्रुफ देखने में हरबार की तरह श्रिया ने मदद की है । समग्र प्रुफ वाचन में डॉ. झवेरीलालजी चावड़ाने मदद की है । राजकोट से छपा हुआ यह बाईसवां पुस्तक है ।

यह पुस्तक अपना समज कर सामने से आर्थिक सहयोग देने वालों की सूचि लम्बी है अत: सभी नामों का उल्लेख न करते हुए सबके प्रति धन्यवाद प्रगट करता हूँ। दीदीमाँ की कविताओं के बारे में कुछ लिखना वाणी को मौन करता है। 'चन्द्रमे जे अलांछन, मार्तंड जे ताप हीन' ऐसे पूर्णावतार विमलाजी को प्रणाम करता हूँ।

श्रीरामनवमी, 8 अप्रैल, 2014

-श्रेयस् कारीआ
+91 98 254 16769

प्रकाशकीय

विमलाजी की मूल भाषाओं में लिखी गई कविताओं को एक साथ 'अमरित की बरखा' शीर्षक से प्रकाशित करते हुए हमें आनन्द की अनुभूति हो रही है। हिन्दी, मराठी और अंग्रेज़ी भाषाओं में पूर्व प्रकाशित काव्यसंग्रहों का शीर्षक वही रख कर बाद में लिखी गई कविताओं को जोड दिया गया है। जब की गुजराती, संस्कृत एवं बाँग्ला भाषाओं में लिखी गई कविताएँ प्रथम बार प्रकाशित हो रही है। छोटा विवरण इस प्रकार है -

1.	हिन्दी कविताएँ	144	5.	बांग्ला कविताएँ	3
2.	गुजराती कविताएँ	131	6.	English Poems	57
3.	मराठी कविताएँ	49			
4.	संस्कृत कविताएँ	26		**कुल**	**410**

विमल प्रकाशन ट्रस्ट के ट्रस्टी श्रेयस् कारीआ को इस समग्र सम्पादन के भगीरथ कार्य के लिए बधाई देते हैं जिन्हें बचपन से ही विमलाजी का स्नेह मिला है। राजकोट से छपने वाला हर एक पुस्तक उनके हाथों जीवंत हो उठता है। पीछले करीब दस साल से हर माह प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'संपर्क बिंदु' के आप संपादक भी हैं। हमें श्रद्धा है इस कविताओं को पाठकों के हृदय में चिरंजीव स्थान मिलेगा तथा यह 'विमलवाणी' अपनी अन्तरयात्रा में सहायभूत होगी।

पूरे भारत के पाठक इस कविताओं का आनन्द उठा सके इसलिए अंग्रेज़ी को छोड़कर सभी भाषाओं को देवनागरी लिपि में दिया गया है, स्वयं विमलाजी अपनी लिखावट में देवनागरी लिपि का प्रयोग ही करती थीं!

मुद्राराक्षस के कारण आई त्रूटियों के लिए हम क्षमाप्रार्थी हैं।

श्री रामनवमी
8 अप्रैल, 2014

- विमल प्रकाशन ट्रस्ट

अनुक्रम

१.	हिन्दी कविताएँ		१-१४१
	१	मैं हूं विधाता की	१
	२	जब न था सत्	२
	३	आखिर क्यों ?	३
	४	मुक्ति का भ्रम	४
	५	मौन के द्वार	६
	६	सहज स्पन्दन	८
	७	अमर युगल	१०
	८	खोजोगे तो	११
	९	रीत प्रीत की	१२
	१०	प्रतीक्षा है उसकी	१३
	११	कैसे कहूं ?	१४
	१२	सुरतिया झूम रही	१५
	१३	आग हैं हम	१६
	१४	महब्बत का मज़ा	१७
	१५	अलबेली बहती धारा	१८
	१६	बेबाक़ हो गये हैं	१९
	१७	रूहानी मुस्कान	२०
	१८	कोई समझा तो दो	२१
	१९	बेमतलब की ज़िदगी	२२
	२०	साक्षित्व	२३
	२१	किसी ने पूछा	२४
	२२	किसी ने कहा	२६
	२३	चिरमिलन	२८
	२४	आत्मा की भाषा	२९
	२५	वीतरागता	३०

२६	मौन का संगीत	३१
२७	तुम नहीं समझोगे	३२
२८	अब मुझे जाना ही है	३३
२९	मृत्यु बुला रही है	३४
३०	नन्दादीप	३६
३१	नवविध भ्रम	३७
३२	जो समरस हुआ	३८
३३	चैतन्यके साम्राज्य में	३९
३४	सहजानन्द	४०
३५	संजीवनी	४१
३६	वारुणी	४२
३७	उसके बाद ?	४४
३८	एकाकी	४६
३९	उन्मीलन	४८
४०	विशुद्ध जीवन	४९
४१	आर्त्त पुकार	५०
४२	ज्ञानदीप	५१
४३	स्पन्दित मौन	५२
४४	प्रेमशिखा	५३
४५	अमृत-धारा	५४
४६	दिक्काल के उस पार	५५
४७.	जागत जिस पल	५६
४८.	गुरुतत्त्व में	५७
४९.	जीवन की यह अजस्रधारा	५८
५०.	वेद विदेह सदेह हुए	५९
५१.	जीवन की इस मधुसन्ध्या में	६०
५२.	यह कैसी कहो निठुराई	६१
५३.	जब प्रियतम के	६२

५४. मरना तो है ही ६३
५५. गागर में सागर ६४
५६. फिर फिर बादल ६५
५७. साधो नीकी सम समता ६६
५८. मैं का मयखाना ६७
५९. रोपे गये थे पङ्क में ६८
६०. सखि री मोरे ६८
६१. नयन खुले थे ६९
६२. विश्वम्भर का विश्वरूप ७०
६३. मैं मूर्त हूँ, अमूर्त भी ७१
६४. माई री म्हेंतो ७२
६५. विश्वम्भर के ७३
६६. मंडरा रही है ७४
६७. देश की समुचे इम्तिहाँ की ७६
६८. अब न मैं हूँ ७७
६९. जीवन विमल ७८
७०. अविरत अमृत ७९
७१. दिन दहाडे जाओ ८०
७२. हम जा बसे हैं ८१
७३. गाया था गीता में ८२
७४. मैं तो गई थी वृन्दावन ... ८३
७५. मेरे प्रभु एक बार ... ८४
७६. धर्म सनातन है ... ८५
७७. गंगा गंगोत्री लौट चली ... ८५
७८ रहना नहीं ... ८६
७९. बूंद बूंद को तरस रही थी ... ८६
८०. ब्रह्माण्ड ब्रह्म का ८८
८१. मिलन हुआ सुप्रभात में ८९

८२. करनी कथनी एक समान ९०
८३. अमरित की बरखा ९१
८४. जीवनयोग ९२
८५. त्रिवेणी ९३
८६. गहरा सन्नाटा ९४
८७. विश्व है चिद् विलास ९५
८८. सहजता समाधि दशा ९६
८९. तन में भारत देश ९६
९०. यह क्यों कर करुणा ९७
९१. प्रमाद प्रतिरोधार्थे ९७
९२. प्राणों के मन्दिर में ९८
९३. प्रमाद रहित विश्राम ९८
९४. विमल गुंजन ९९
९५. शब्द कहाँ खो गये ९९
९६. भारी खुशी संयम में है १००
९७. दुनिया में रहेगी १०१
९८. ज़िन्दगी की दोर १०२
९९. जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र १०३
१००. सच्चिदानन्दघन १०४
१०१. पति मार डाले पत्नी को १०५
१०२. मैया मोहे काहे कहत १०६
१०३. बेचैनी १०७
१०४. अमृत कलश १०८
१०५. तबियत है माशुकाना १०९
१०६. हिमगिरि दर्शन ११०
१०७. हरिशरण १११
१०८. स्वधर्म का सूर्योदय १११
१०९. जन जन के आराध्य राम ११२

११०. भारत भूमि का टूकड़ा ही नहीं ... ११३
१११. प्रधान प्रहरी ११३
११२. भ्रातृसंघ ११४
११३. रक्ष भारतम् रक्ष भारतम् ११५
११४. कोई कल गये ११६
११५. समजत ना मन ... ११७
११६. सब बल बन गये ... ११७
११७. निर्मल जल कल कल बहता था ... ११८
११८. प्रज्ञा वंशी ११९
११९. शब्द शेष अस्तित्व १२०
१२०. हम कौन थे १२१
१२१. व्रज में होरी खेले १२२
१२२. ए मेरे मालिक १२३
१२३. गहरा सन्नाटा १२४
१२४. इश्क में भला १२५
१२५. चुभने लगा बुढ़ापा १२६
१२६. भारत नहीं टूटेगा १२७
१२७. हरत मन १२९
१२८. जीवन स्वयं दिव्यता १३०
१२९. सुमन करे जब नमन १३१
१३०. विहरत श्री हरि १३१
१३१. चक्रसुदर्शन १३२
१३२. लोकतंत्र के भीष्म-द्रोण १३३
१३३. हम ऋषियों की सन्तान १३४
१३४. हर नज़र के जलवे से ... १३५
१३५. हम बेबाक हो गये ... १३६
१३६. इश्क हो गया १३७
१३७. मौत के झूले पे बैठी १३८

१३८. सुनलो मेरे मन के मीत १३९
१३९. इश्के इलाही १४०
१४०. क्या खुशनसीब हैं १४१
१४१. जिन्हें ज़िन्दगी से १४२
२. गुजराती कविताएँ ... १४२-२७४
१४२. अमे वणझारा १४५
१४३. अमोने तेडुं आव्युं १४६
१४४. अलविदा १४७
१४५. मृत्युपत्र १४८
१४६. आकाश धुंधळुं छे १४९
१४७. परोढ पांगर्युं १५०
१४८. अरावलि अरावलि १५१
१४९. क्यां सुधी रमत रमशो १५२
१५०. अवधूत अमे १५३
१५१. मात्र श्वसन नथी करती १५४
१५२. सहजानन्दथी मघमघता १५५
१५३. मन पोते १५६
१५४. मौननुं लावण्य १५७
१५५. सत्संग विना १५७
१५६. हुं देह रूपे १५८
१५७. मारुं जाणवापणुं १५९
१५८. हैयुं समसमी ऊठ्युं १६०
१५९. मने जीववुं गमे छे १६१
१६०. मळवा करवामां १६२
१६१. अमे जाणीअे छीअे १६३
१६२. कविहृदय होवुं १६४
१६३. जगत आखानी माय १६५
१६४. निरव अवकाशे १६६

१६५. मननी उन्मनी १६७
१६६. होवापणुं १६८
१६७. शाश्वतीथी जुदुं १७०
१६८. दुःख थीजी गयुं १७२
१६९. निरखवा हरिने १७३
१७०. हिमालयनुं चोमासुं १७४
१७१. आहार बन्यो औषधि १७५
१७२. ब्रह्मप्रकट १७५
१७३. ज्ञान विहोणी भक्ति १७६
१७४. माणी अमे आतमगोठडी १७७
१७५. मानव देहे अवसर मळियो १७८
१७६. वहाला रे तमे भजोने १७९
१७७. काया छे काची १७९
१७८. चल मेरी काया १८०
१७९. हिमगिरिवासी १८१
१८०. जातने छेतरे जे जण १८२
१८१. देशने बचावजे १८३
१८२. अमे गेबीवासमां १८४
१८३. सद्बुद्धि सहुने आपो १८४
१८४. चैतन्य सागर १८५
१८५. निर्गन्थ दशा १८६
१८६. मूळ मारग १८६
१८७. आत्मार्थीना लक्षण १८६
१८८. वृत्ति वहे १८७
१८९. ब्रह्मनी आराधना ... १८८
१९०. परम तत्त्व ... १८८
१९१. जीवनयोग एटले ... १८९
१९२. मारी एक आंतरिक ईच्छा १९०

१९३. ब्रह्म स्वयं बन्युं

१९४. आक्रंद करे छे मात भारती

१९५. शानो अजंपो

१९६. अभी व्यवितनुं ऐश्वर्य

१९७. हर संसारी

१९८. मने गोठतुं नथी

१९९. मारे कहेण आव्युं

२००. कोईअे गगनने कह्युं

२०१. गुजरातनी धरतीनी

२०२. आजे नाताळनो दी छे

२०३. चित्त स्वस्थ

२०४. प्रारब्ध शेष काया

२०५. संचित संचालित काया

२०६. भव भय कोने

२०७. काया नगरी

२०८. सन्त श्रेष्ठने करुं नमन

२०९. हैयानो हार

२१०. अमारि प्रवर्तन

२११. इक दिन अमथा

२१२. अकलंक हरिनी अकळ लीला ...

२१३. बापु

२१४. सहजात्मस्वरूप ज गुरु तत्त्व ...

२१५. गुरुपूर्णिमा निमित्ते - स्वजनो जोग...

२१६. प्रणाम

२१७. हरि शरण रही

२१८. समाधिस्थ जीवन

२१९. विमल विलोकन ...

२२०. वायरा वसन्तना २१२
२२१. लेवाने हरिनाम २१३
२२२. ईशना आम्लेशमां २१४
२२३. चालो घसाईने २१५
२२४. विमल गुंजन २१६
२२५. श्रीहरिनाम २१७
२२६. अभिव्यक्ति २१७
२२७. पंथ निर्वाणनो २१८
२२८. अनाकार ग्रही आकार २१९
२२९. हार मानो नहि २२०
२३०. माझम राते २२१
२३१. देहमां विलसे २२२
२३२. मारे श्वासे श्वासे २२२
२३३. वळी संभळाय छे २२३
२३४. अगम आवासे २२४
२३५. अमे रमीअे रे २२५
२३६. पिंजरामां २२६
२३७. तत्त्वमांथी जन्म छे २२७
२३८. जन्म मरणने पेले पार २२८
२३९. म्हारी मोंघेरी देहलडी रे ! २२९
२४०. ज्यारे ज्यारे जवुं पडे छे २३०-२३१
२४१. मारामां जीवन छे रोमे रोम २३२
२४२. परोढ थयुं २३३
२४३. निजानंद निज पदमां २३४
२४४. देहमां स्थिति २३५-२३६
२४५. सत्‌ने सथवारे २३७
२४६. हुं बुझवा छुं २३८-२३९

२४७. काची कायानी मढुली २४०
२४८. जीवन अमृतथी २४१
२४९. कटोकटी २४२
२५०. कर्ममां रहुं २४२
२५१. काळनो ग्रास २४३
२५२. लगनी लागी २४४
२५३. एकाकी विचरण २४५
२५४. अमे गेबी निवासना वासी २४६
२५५. जीवनचक्र फरे छे २४६
२५६. हवे जीववुं अेटले २४७
२५७. में तो वणी लीधा २४८
२५८. अपूर्व आव्यो अवसर २४९
२५९. सर्वाकार सर्वाधारे २५०
२६०. जीवन मांहे जीवुं २५१
२६१. रक्त टपकती २५२
२६२. पगरव गगने २५२
२६३. आर नथी, पार नथी २५३
२६४. जवुं पडशे २५४
२६५. नमन करुं २५५
२६६. जय जिनेन्द्र जय जिनेन्द्र २५५
२६७. खरी पड्या २५६
२६८. श्रद्धा जीववी पडे २५७
२६९. नवुं वर्ष २५८
२७०. विचार अटकता नथी २५९
२७१. भारतनुं भावि २६०
२७२. सत् - चित्तनुं अत्तर २६१
२७३. सांभळोने साद म्हारो २६२
२७४. धर्माचरण दुर्लभ थतुं जाय छे २६३

३. मराठी कविताएँ ... २७५-३२४
२७५. नंदादीप २६९
२७६ नवविध भ्रम २७०
२७७. जो समरस झाला २७१
२७८. चैतन्याचे साम्राज्यांत २७२
२७९. संजीवनी २७३
२८०. वारुणी २७४
२८१. पुढें काय २७६
२८२. एकाकी २७८
२८३. उन्मीलन २८०
२८४. विशुद्ध जीवन २८१
२८५. धांवुनिया २८२
२८६. उजळा ज्ञानदीप २८३
२८७. स्पंदित मौन २८४
२८८. प्रेमशिखा २८५
२८९. अमृताची धार २८६
२९०. दिक्कालाचे पैल २८७
२९१. मी खेळतसे २८८
२९२. धरती मातेचा कुक्षी २८९
२९३. आत्मकृपा २९०
२९४. रामा तुझें नाम २९१
२९५. विठलाचे नाम २९१
२९६. हे जगत नव्हे २९२
२९७. नीर नयनींचे २९३
२९८. साठी बुद्धि पाठी २९३
२९९. हे जर्जर वृद्ध शरीर २९४
३००. हे विश्वचि माझे घर २९५

३०१. अव्यक्त सत्ता २९६
३०२. चित्त स्वस्थ २९७
३०३. मरे एक २९८
३०४. कर्तृत्व भोक्तृत्व २९९
३०५. आज तुकाराम बीज ३००
३०६. एकनाथषष्ठी ३०१
३०७. हे कशी दुर्दशा ३०२
३०८. हे प्रभो ३०३
३०९. शब्द ओसरले ३०३
३१०. मनुज तनु धरुनिया ३०४
३११. शान्ति तेथे शक्ति ३०५
३१२. आम्ही रहातो पंढरपुर ३०५
३१३. हो काया पंढरपुर ३०६
३१४. गोकुल आमुचे ग्राम ३०७
३१५. देह झाले देवालय ३०८
३१६. सांग सखि ३०९
३१७. ब्रह्म चि बनले ३१०
३१८. सहजानन्द ३१०
३१९. देहांत साम्य धातूंचे ३११
३२०. माझे इवलेस ३११
३२१. आतां जगणे म्हणजे ३१२
३२२. आपुलो मरण ३१३
३२३. एकाकी विचरते ३१४
३२४. शरीरस्त असतांन ३१५
४. संस्कृत कविताएँ ... ३२५–३५१
३२५. श्री ज्ञानेश्वर प्रशस्ति ३१९
३२६. चिर नूतनाय ३२०
३२७. प्रणिपातेन प्रतिप्रश्नेन ३२०

३२८. अध्यात्म विज्ञान समन्विताय ... ३२१
३२९. कृपा कटाक्ष कांक्षीणम ३२१
३३० नादमूलं ३२२
३३१. जगदम्ब अविलम्ब ३२२
३३२. वेदज्ञं श्रुतिसारज्ञं ३२३
३३३. सत्यंवद, धर्मंचर ३२३
३३४. बुद्धं शरणं -१ ३२४
३३५. बुद्धं शरणं -२ ३२५
३३६. ब्रह्म निष्कल ३२६
३३७. त्वमेव विश्वस्य २२६
३३८. दुखं मधुरं ३२७
३३९. श्री विवेकानन्दाय नमः ३२७
३४०. मोक्षोपलब्धि ३२८
३४१. हिमाचले, अविचलासने ३२९
३४२. अहो निबिड़ यामिनी ३२९
३४३. सत्यम् प्रति ऋतम् ३३०
३४४. वंदे प्रथमम् ३३१
३४५. नंद नंदन ३३१
३४६. पूर्णम् पूर्णातीतम् ३३२
३४७. प्रश्नक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे ३३२
३४८. तृष्णा शमने ३३३
३४९. मौनम् - रमणशीलम् ३३३
३५०. शून्यता शून्यावकाशे ३३४
३५१. यद् यद् करोमी कर्मम् ३३४
५. बाँग्ला कविताएँ ... ३५२-३५४
३५२. आमार बुके ठाकुर २५६
३५३. हरि बोल ३५७
३५४. शुनि लेन प्रभु ३५८

६. अंग्रेज़ी कविताएँ ... ३५५-४१२
355. Renunciation 343
356. The Flame of Freedom 344
357. Who Is Afraid 345
358. Beyond the Known 346
359. Self-Discovery 347
360. Question Yourself 348
361. The Shadow of Silence 349
362. The Poison of Thought 350
363. The Trap of Ideation 351
364. Energy Smiles 352
365. The Greatest Art 353
366. The Ancient Tree 354
367. Blessed Is He 355
368. Rare Moments 356
369. The Gaze of Love 357
370. He Dies Every Day 358
371. Why Suffer at All ? 360
372. I knock at Every Heart 361
373. Life as It Is 363
374. In the Net of Time 364
375. Passion 365
376. The Naked Emptiness 366
377. The Cross of Sorrow 367
378. Sing with Me 368
379. My Playmate 369
380. My Beloved 370
381. The Beauty of Nothingness 371
382. Empty as Space 372
383. I Am with You 373
384. The Rhythm of Life 374
385. The Life Universal 375

386. No Age Can Claim Me 376
387. Everything Is Changed 377
388. Let Me Carry It 378
389. Life Raised Me 379
390. The Pathless Way 380
391. The Fountain of Life 381
392. Attire of Nothingness 382
393. An Unsoiled Light 383
394. Enough of It 384
395. Beyond All Frontiers 385
396. Silence Is Shy 386
397. The Call of Love 387
398. Death 389
399. The Gift 390
400. Words Fail me 391
401. Homeward Bound 392
402. An Ageless Child 393
403. The Whistling Bird 393
404. The Wheel of opposites 394
405. Life is Simple 395
406. The Smouldering Himalayas 396
407. The trial of patience 398
408. Life sprouts and smile 399
409. For Fellow Pilgrims 400
410. Infinity is the nature 401
411. Silence has sealed the speech 402
412. Life is the Master ... 403
413. निर्मल एवं नीडर परिव्राजिका : विमला ठकार... 404
414. स्मरण 406
415. पसायदान ... 408

मौन के अनुनाद

(हिन्दी कविताएँ)

प्रथम आवृत्ति

संपादिका

डॉ. प्रेमलता शर्मा

प्रथम आवृत्ति : जुलाई, 1969

द्वितीय आवृत्ति : रामनवमी, 2014

कुल कविताएँ : 141 + 3 = 144

प्रथम आवृत्ति की
प्रस्तावना

मुझे विमला बहनजी के साक्षात् दर्शन का सुअवसर कभी नहीं मिला, परन्तु बहन प्रेमलताजी ने उनकी अंग्रेज़ी और हिन्दी में लिखी हुई पुस्तकें पढ़ने को दीं तो पढ़कर मुझे बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। इन पुस्तकों में भाषा का जो सहज प्रवाह है, और उनमें जो अन्तर्भेदिनी दृष्टि है उससे मैं बहुत प्रभावित हुआ हूँ। बहन प्रेमलताजी ने उनकी कुछ हिन्दी कविताएँ भी मुझे पढ़ने को दीं। इन कविताओं में एक प्रकार की फक्कड़ाना मस्ती और सहज आध्यात्मिक प्रकाश मिलता है। विमला बहनजी अध्यात्म को सत्य की उपलब्धि मानती हैं। अध्यात्म क्या है ? इस विषय में 'मन के उस पार' नामक पुस्तक में उन्होंने लिखा है -

"अन्त में, इतना ही कह दूँ कि अध्यात्म यानी सत्य की उपलब्धि। अध्यात्म यानी स्वरूप में प्रतिष्ठा। इसमें आग्रह नहीं, निषेध नहीं, भागना नहीं, हट जाना नहीं, और यह कुछ चंद व्यक्तियों की 'मोनोपोली' भी नहीं। यह मानवजाति के लिए है। यदि यह गृहस्थों के लिए सम्भव नहीं, या सामान्य व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं, तो आपके सामने एक नितान्त सामान्य व्यक्ति ही बैठी है जिसने अग्नि में जलना भी देखा है, जलने का मज़ा भी लूटा है, और जलने के उस पार जो जीवन है, मन के और बुद्धि के परे जो चेतना का साम्राज्य है उसको भी देखा है। जो कहता है कि सामान्य व्यक्ति का काम नहीं, यह आपको ठग रहा है। यह मानव मात्र का अधिकार है कि धर्म से परे जाकर अध्यात्म के क्षेत्र में वह प्रवेश करे।"

यहाँ कह देना आवश्यक है कि विमला बहन धर्म और अध्यात्म में भेद करती हैं। धर्म प्रकृति का विधान है, अध्यात्म स्वरूप में प्रतिष्ठा।

"स्वरूप में प्रतिष्ठा होने के बाद क्रियाओं का अन्त होकर स्वायत्त कर्म का प्रारम्भ होता है। स्वरूप में प्रतिष्ठा होने पर लाभ क्या है। जो आंशिकता है

दर्शन की ओर वर्तन की, वह समाप्त होने पर हम समग्रता में ओतप्रोत हो जाते हैं । सुख और दु:ख, सफलता-असफलता के परे जो आनन्द का साम्राज्य है - सुख अलग है, आनन्द अलग है - प्रवृत्ति और निवृत्ति के परे जो शान्ति का साम्राज्य है वहाँ जाकर जीते हैं । और उस जीवन में न मस्ती है, न बेहोशी है, न होश है; वहाँ न राग है, न विराग है, न आसक्ति है, न अनासक्ति है, वहाँ बस है तो जीवन है; वहाँ बस है तो ऐसी गति है जिसके कोई हेतु नहीं; जिसके कोई दिशा नहीं ।''

''और मैं मानती हूँ कि मनुष्य वैश्विक चेतना का ऐसा मुक़ाम है कि जहाँ से ऊर्ध्वगति होकर इह आत्मिक क्षेत्र में जाना है । इसकी भूख और प्यास आज सारे संसार में कहीं-न-कहीं; किसी-न-किसी रूप में उसकी ओर मनुष्य को खींच रही है । तो, शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक विकास से परे अध्यात्म के क्षेत्र में जाना है, जाना ही अपनी समस्त सम्भावनाओं को खिलाना है ।''

विमला बहन की कविताओं में यही अध्यात्म तत्त्व है जो चित्त के अतल गह्वर से निकल कर सहज ही पाठक के चित्त पर अपना प्रभाव डालता है । 'साक्षित्व' शीर्षक अपनी कविता में उन्होंने कहा है -

जहाँ किसी भी प्रकार की द्वैत-भावना का
प्रवेश ही नहीं,
जहाँ काल को पाँव रखने का अवकाश
ही नहीं है,
जहाँ अहं के स्फुरण को अवसर ही
नहीं है,
जहाँ चित्त या बुद्धि को जन्म पाने की
आशा ही नहीं है
जहाँ सहज समाधि का अबाधित
साम्राज्य है ।

सहजता के पट पर - वहाँ, व्यवहार
के चलचित्र अंकित होते रहते हैं ।
प्रतिक्रियातीत सहज व्यवहार साक्षित्व
की अनिवार्य अभिव्यक्ति है ।

यह कविता ही उनकी सारी अनुभूतियों को खोलकर सामने रख देती है । उनकी कविता की यही सच्ची भूमिका है ।

साधारणत: लोग जीवन का आधार स्थूल शरीर के जैव धर्म को मानते हैं । जो कुछ और गहरे जाते हैं वे मनोमन रूप को ही सब कुछ समझ लेते हैं । परन्तु जो मन से परे है, बुद्धि के भी परे है, उसको जीवन का उल्लास समझना कम लोगों के भाग्य में बदा होता है । विमला बहनजी जीवन के परिपूर्ण रूप में देखती हैं । जो मन और बुद्धि के परे है वह भी जीवन का ही अंग है । मनुष्य का यही सहज धर्म है जो इन्द्रिय, प्राण, मन और बुद्धिके स्तर को उपेक्षित नहीं करता; परन्तु उससे ऊपर उठकर उसके परिपूर्ण रूप को देखता है । यही मनुष्य का अपना सत्य है, उसका वास्तविक सहज रूप है । इसी सहज आनन्द के कारण विमला बहन की कविताओं में विचित्र प्रकार का उल्लास मिलता है जो कबीर जैसे घरफूंक मस्ती के सन्तों में ही सुलभ है । उन्होंने अपनी एक कविता में अपना परिचय इस प्रकार दिया है –

मैं हूँ विधाता की एक कविता
मैं हूँ छन्दों का निज छन्द ।
आकाश जिसने सँवारा ।
मैं हूँ यह निरालम्ब अवकाश ।
काल है जिसकी माया-लीला
मैं हूँ वह अनन्त अकाल ।
रूप में जो निखर उठा,
मैं हूँ वह रूपातीत स्वरूप ।

पंच प्राणों के साज़ पर चेतना गा उठी
मैं हूँ वह मधुर गीत ।
मृण्मय पर चिन्मय ने हाथ फेरा
मैं हूँ वह सहज स्पन्दन ।
विश्वचेतना अकारण झंकृत हुई
मैं हूँ वह अनायास कम्पन ।

इन रचनाओं में कवयित्री का वही उल्लास-कम्पन मुखरित है ।

विमलाबहन की मातृभाषा मराठी है । हिन्दी में उन्होंने जो कविताएं लिखीं हैं, उनसे जान पड़ता है कि इस भाषा पर भी उनका पूरा अधिकार है । भाषा वस्तुतः उनके आन्तरिक उल्लासके इंगित पर स्वयं रूपायित होती है ।

विमला बहन जीवन की समग्रता में विश्वास करती हैं । जीवन उनकी दृष्टि में अविभाज्य और अखण्ड है । 'मन के उस पार' नामक पुस्तक में उन्होंने कहां है -

''जब मैं कहती हूँ कि जीवन में भौतिक नाम की कोई वस्तु नहीं है, जीवन में जड़ पदार्थ नाम की कोई वस्तु नहीं है, तब तात्पर्य यही है कि स्पन्दन हैं, लपेटे गए हैं पथ्थर के आकार में, पाषाण के आकार में कुछ लपेटे गए हैं, कुछ जल के कणों में, बिन्दुओं में लपेटे हुए हैं, कुछ वृक्ष के पत्ते के रूप में लपेटे गये हैं, कुछ मानव-देहधारी के रूप में लपेटे गए हैं लेकिन है सिर्फ़ स्पन्दन । यह जो पहचानेगा वह जीवन को दो सत्ताओं बाँटेगा नहीं । वे लोग जो दो सत्ताओं में बाँटते हैं, वे कुछ समय आध्यात्मिक काम के लिए और कुछ समय व्यवहार के लिए देते हैं । शरीर यात्रा को चलाने के लिये पैसा कमाना यह हो गया भौतिक जीवन और मन्दिर में या देरासर में जाकर बैठना, जप करना यह हो गया पारमार्थिक जीवन । जिस दिन ध्यान में आएगा कि शरीर-यात्रा शव-यात्रा से भिन्न है, वह शिवयात्रा है और उस शिव-यात्रा के लिए जो धन कमाना है, जो पैसा कमाना है वह भी आध्यात्मिक कर्म है, वह भी उपासना-कर्म है, और उसमें उतनी ही सावधानता की जुरूरत है जितनी कि जप करने के लिए रखते हैं, तब देखिएगा कि घर में बैठे-बैठे जीवन

कैसे बदल जाता है । तो पहली चीज़ यहाँ जो आप लोग आकर बैठे हैं, उनके सामने मैं यह रखूँ कि जीवन में यह एकता, एक अविभाज्यता है, उसको हम पहचानना सीख जायें, यह बड़ी बात है ।''

इस प्रकार जीव की अविभाज्य परिपूर्णता में अगाध निष्ठा के कारण ही इन कविताओं में जीवन की समग्रता का उल्लास मुखरित है । ये सहज ही हृदय में प्रवेश कर जाती हैं ।

विमला बहन की इन कविताओं का मैं स्वागत करता हूँ । मुझे आशा है कि सभी सहृदय इनका दिल खोलकर स्वागत करेंगे और मन और प्राण के अतीत सहज आनन्दका रसास्वादन करेंगे ।

बहन प्रेमलताजी भी सहृदयों की धन्यवाद-भाजन हैं । उन्होंने बड़ी रुचि और परिश्रम के साथ इनका संकलन और सम्पादन किया है । वे अन्य सन्तों की आध्यात्मिक अनुभूतियों को भी प्रकाशित कर चुकी हैं । वे ही इन कविताओं को भी सुलभ कर रही हैं, इसलिए वे भी काव्य-प्रेमियों की धन्यवाद-भाजन हैं ।

१६-८-१९६९ हजारीप्रसाद द्विवेदी

प्रथम आवृत्ति का सम्पादिका का निवेदन

प्रस्तुत प्रकाशन में लेखिका की अन्त:स्फूर्ति की कुछ पद्यमय, कुछ गद्यमय शाब्दी अभिव्यक्तियाँ संकलित हैं । अंग्रेजी में आपके तीन पद्यसंग्रह प्रकाशित हो चुके हैं -The Flame of Life,The Eloquent Ecstasy, Friendly Communion. हिन्दी में आपका यह अपने ढंग का पहला प्रकाशन है । इसमें संकलित पहली २९ रचनाएँ उसी रूप में प्रस्तुत हैं जिसमें स्फूर्त हुई थीं, शेष १७ में आप के 'उन्मीलन' नामक मराठी पद्य-संग्रह का स्वयं आप के द्वारा किया गया हिन्दी अनुवाद है ।

ये 'अनुनाद' प्रकाशन के लिये लिपिबद्ध नहीं किये गये थे; मित्र-परिवार के लिये 'मौन' का प्रसाद-वितरण ही एकमात्र उद्देश्य था । किन्तु मित्र-परिवार इस प्रसाद को स्वयं तक सीमित नहीं रख सका, विशेषत: कुछ साहित्यिक मित्रों को अधिक विस्तृत क्षेत्र में इसका वितरण इष्ट था । फलत: यह अकल्पित प्रकाशन संपन्न हुआ ।

'मौन' का कुछ परिचय शायद आवश्यक हो । वाग्व्यवहार का अभाव वास्तविक मौन नहीं । मौन कोई अभावात्मक पदार्थ नहीं, वह तो 'तन मन के घेरे टूट जाने पर' प्रस्फूट होने वाला चेतना का मधुर स्मित है, स्निग्ध आलोक है । प्रस्तुत 'रचनाओं' का स्रोत वही 'मौन' है; जीवन के स्पर्श से ये रोमांचित हैं, उसके रस से आप्लावित हैं । 'जीवन' से इन का सीधा सम्बन्ध हैं, जीवन-सम्बन्धी किसी 'सिद्धान्त' से इनका कोई वास्ता नहीं । जिन्हें 'जीवन' में रुचि है उन्हें संभवत: इनका संग-साथ प्रिय लगेगा ।

इन 'रचनाओं' का उत्स या उद्देश्य कुछ भी वैसा नहीं जैसा कि आम तौर पर हुआ करता है । इसलिये इनमें हमारी किसी परिचित साहित्यिक विधा का, किसी शृंखलाबद्ध प्रणाली का दर्शन न हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं । कुछ स्थलों पर तो भाषा में भी कुछ भिन्नता (उर्दू की झलक) दिखाई देगी । उसका कोई विशेष कारण

खोजने की आवश्यकता नहीं । 'सहजता' में ही यहाँ सौन्दर्य है; किसी लीक के अनुसरण या विसर्जन का प्रश्न ही नहीं उठता ।

अपने जीवनको सामान्य जन-जीवन से भिन्न अथवा उच्च रूप में परिचित न होने देने के प्रति लेखिका का सदैव विशेष आग्रह रहा है । बड़े प्रयत्नसे आपने अपनी 'सामान्यता के ऐश्वर्य' की रक्षा बहुत समय तक की है । इस संकलन में आप का चित्र और आत्मपरिचयात्मक लघु निबन्ध (जो दो वर्ष पूर्व सन्त विनोबाजी के आग्रह से 'मैत्री' पत्रिका के लिये लिखा गया था) एक परम आत्मजन के अनुरोध से दिया गया है । वे हैं - विभूतिस्वरूप श्रीगोपीनाथ कविराज । आपके अनुरोध को लेखिका किसी प्रकार टाल नहीं सकीं, बल्कि उसके पालन से उन्हें आन्तरिक प्रसन्नता का अनुभव हुआ है । आप दोनों महानुभावों का 'परस्पर भाव' शब्दातीत है ।

माननीय आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीने अपनी अपार व्यस्तता में से कुछ अमूल्य क्षण निकाल कर प्रस्तावना लिख देने का जो अनुग्रह किया है उसके लिये लेखिका तथा सम्पादिका दोनोंकी आन्तरिक कृतज्ञता उन्हें अर्पित है ।

सम्पादन में जो भी त्रूटियाँ रह गई हों, उसके लिये सम्पादिका सभी पाठकों के समक्ष क्षमाप्रार्थिनी है । उर्दू शब्दो की वर्णानुपूर्वी (Spellinng) 'उर्दू-हिन्दी कोश' (हिन्दुस्तानी ऐकेडेमी, लखनउ , से प्रकाशित) के अनुसार रखी गयी है । बहुत कम समय में मुद्रण का कार्य तत्परता एवं कुशलता से सम्पन्न करने के लिये तारा यन्त्रालय के अधिकारी धन्यवाद के पात्र हैं ।

अषाढ़ी (देवशयनी) एकादशी, २५ जुलाई के दिन अर्बुदाचल (आबू) में इस संकलन की रूपरेखा बनी एवं कामदा एकादशी के दिन यह निवेदन लिखा गया; दो-चार दिनों में पुस्तक पाठकों के हाथ में चली जायेगी ।

प्रेमलता शर्मा
अध्यक्षा, संगीत-शास्त्र विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-५

कामदा एकादशी,
८ अगस्त, १९६९

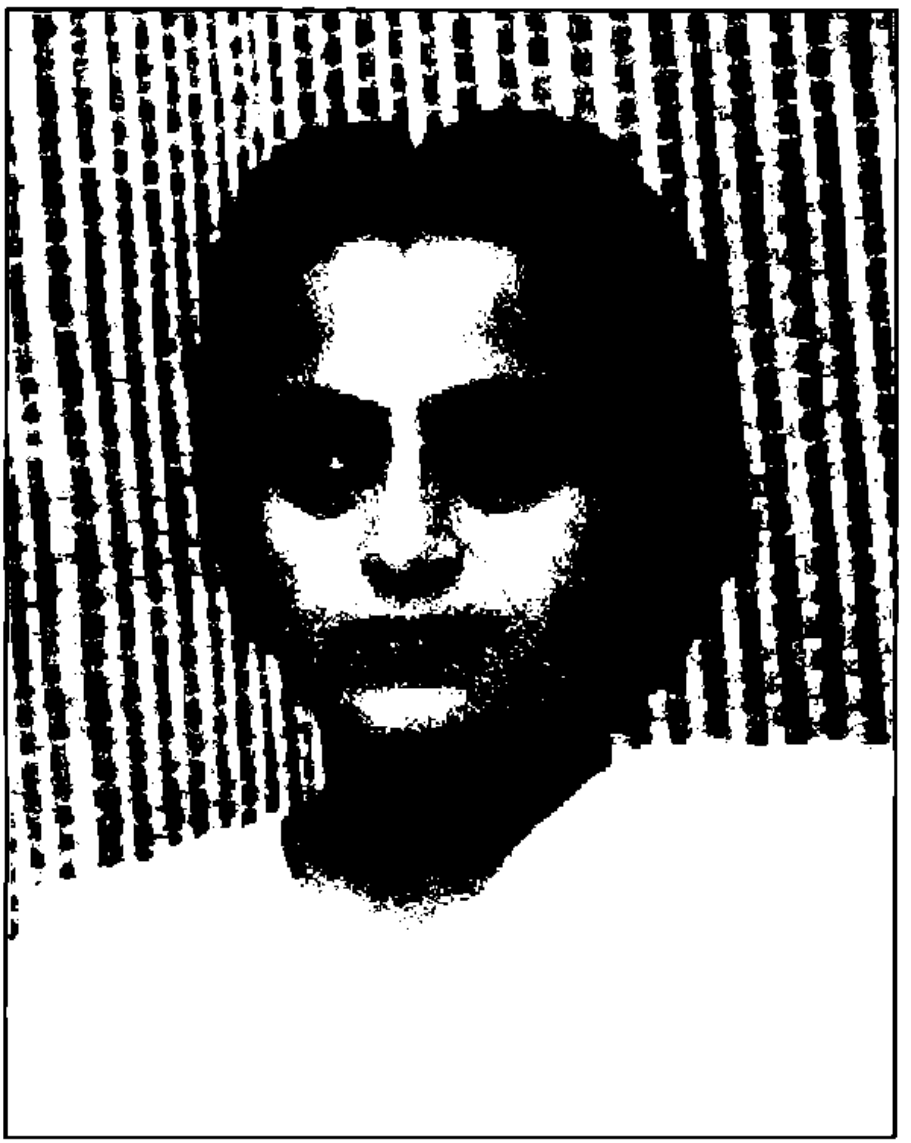

उचट गयी मोरी नींद सबेरे

विमला ठकार

जो जीवन मैं जी रही हूं, उसकी प्रेरणा मैंने कैसे पायी ? कब पायी ? कहाँ से पायी ? स्नेही जन कहते हैं कि इस पर लेख लिखूं । लेख, निबन्ध या कहानी लिखना जानती तो अब तक ग्रन्थों का ढेर न लग जाता ! लेकिन इस विवशता पर कोई भरोसा रखे तब तो ! जो व्यक्ति सभाओं में बोलता है, उसको लेखन-कला अवगत होनी ही चाहिये ऐसा भ्रम प्रचलित हैं ।

पीछे मुड़कर देखती हूँ कि अपने नाना के व्यक्तित्व का एवं जीवन का मुझ पर अत्यन्त गहरा प्रभाव पड़ा था । नाना थे एक परम भागवत । गृहस्थाश्रम में संन्यास का ऐश्वर्य उंडेला था उन्होंने । ६ फ़ीट का लम्बा, छरहरा शरीर; गौर वर्ण, बड़ी-बड़ी भावभीनी आँखें; स्निग्ध, सौम्य मुद्रा, भक्ति रस छलकाती मधुर वाणी; अनासक्त सावधान व्यवहार - सब याद आता है । तुलसी का रामचरितमानस, ज्ञानराय की ज्ञानेश्वरी - थे थे उनके अभिन्न साथी ।

रहते थे राजमहल में; पचासों नौकर थे; घोड़े थे; गाड़ियाँ थे; बीसों गायें थीं; थी ज़मीन और था अमाप ऐश्वर्य; किन्तु उसमें विचरते थे परम विरागी सहजता से । बाह्य मुहूर्त पर उनको ध्यानस्थ बैठा देखती तो मेरा नन्हा सा हृदय ध्यानावस्था में प्रवेश करने को तड़प उठता । मधुर कण्ठ से नाना नामस्मरण करते तो वह नामरस पाने को हृदय छटपटाता ।

पांच वर्ष की आयुतक तो यह क्रम चला । छठे वर्ष में खोज शुरू हुई । अनन्त की यात्रा प्रारंभ हुई । जंगल में खोजने से लेकर दक्षिणेश्वर जाने, घर से भागने तक के अनेक प्रयास हुए । घर पर अपने मन से त्राटक का अभ्यास, जप का प्रयास, धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन करती रही । ईश्वर का अस्तित्व बुद्धि से जानने के पहले ही हृदय में उसकी सत्ता का नशा छा गया । उसके आलोक ने मेरी आँखें चुरा लीं । इस नज़र को कैद किया । विद्यालय में पढ़ाई चलती; घर पर माँ की मदद में घरेलू काम करने होते,

परन्तु मेरा ध्यान रहता फुर्सत के क्षणों पर, छूटते ही योग-वासिष्ठ, दासबोध, एकनाथी भागवत, स्वामी रामतीर्थ एवं स्वामी विवेकानन्द के ग्रन्थादि पढ़ने लगती; सब पढ़ गयी । चौदह वर्ष की आयु होते-होते मैं ने मित्र-परिवार का लेखा-जोखा रखना शुरू किया था । पहला नाम लिखा था नाना का । दूसरा था पिता-माता का । फिर आये ज्ञानेश्वर, एकनाथ, नामदेव आदि । बाद में आये विवेकानन्द, रामतीर्थादि । हर रविवार को दोपहर में एक खेल खेला करती अपने से । कमरा बन्द करके कल्पना किया करती कि ज्ञानेश्वर आये हैं । मुझ से बातें कर रहे हैं । विवेकानन्द आये हैं । साहस दिला रहे हैं ।

इस खेल की ज़रूरत भी थी । विवाह के समय में मेरी उदासीनता घर भर को अखरती । संन्यासकी बातें एवं उस में मेरी रुचि तो हास्यास्पद मानी जाती ! अपनों के बीच मैं अकेली पड़ गयी थी । परायी-सी बन रही थी ।

यह क्रम चला कॉलेज जीवन में भी । बाह्य जीवन में समाज की मर्यादायें सम्हाल कर चलती । अन्तर्जीवन में निपट एकाकी विचरण करती । कभी श्रीरवीन्द्रनाथ टैगोर की रचनायें तो कभी शरद् बाबू के उपन्यास साथ करते; कभी सूफ़ियों के जीवन-चरित तो कभी उपनिषदों की वाणी संगत करती ।

ईश्वर दृष्टि का विषय नहीं यह बोध होते ही पूजा, जप का क्रम शान्त हुआ था । दर्शन-शास्त्र का अध्ययन करते-करते वेदान्त रग-रग में छाने लग गया था । आत्मरत जीवन की आकांक्षा में गहराई एवं समृद्धि ओत-प्रोत होने लगी थी । जीवन का एक नशीला, उद्दाम, जोशीला अध्याय खेला जा रहा था । दैनिक जीवन में एक क़दर नशे में झूमती हुई जी रही थी कि उसका वर्णन होना असम्भव है । हर क़दम पर मानो मिलने जाती थी चैतन्य महाप्रभु से या मीरां से । मोड़ पर मानो मुझसे मिलने आ रहे थे कभी गौतम बुद्ध तो कभी ईसा ।

इसी अवधि में अनायास अनेक पन्थों के अनेक सन्तों से परिचय हुआ । सहवास हुआ । सीखने को मिला । कुछ नाम इस प्रकार है :-

(१) मण्डला निवासी हठयोगी भक्त स्वामी श्रीसीतारामदासजी

(२) लोदीखेड़-निवासी परम भागवत श्री बाबा जी महाराज

(३) कन्नौज-निवासी देवी उपासक, शाक्तपंथी श्री गौरीशंकरजी महाराज

(४) राधास्वामी पंथ की बनारस गद्दी के महाराज

(५) वरखेड़ के सन्त तुकड़ोजी महाराज

(६) प्रज्ञाचक्षु स्वामी शरणानन्दजी

(७) श्री मेहेरबाबा

(८) श्री आनन्दमयी माँ

(९) स्वामी विरजानन्दजी

(१०) स्वामी भास्करेश्वरानन्दजी

(११) उज्जैन के निर्वाणपंथी अखाड़े के महंत

(१२) श्री शोभा माँ

सब के नाम आज याद नहीं आते । जीवन के ताने-बाने में इन सन्तों का स्नेह बुना गया है । सन्तों की बिरादरी में साने गुरुजीका नाम जोड़ना चाहती हूँ । गुरुजी प्रेम की सजीव मूर्ति थे । प्रेम का स्पर्श क्या होता है उसका साक्षात्कार उसके सहवास में होता था ।

शिक्षणकाल की समाप्ति पर क्षितिज व्यापक बनी । तीर्थरूप दादा धर्माधिकारीजी का पावन सहवास पाया । उनके कारण श्रीविनोबाजी का परिचय पाया । दादा के साथ भारतकी पहली यात्रा हुई । भूदान आंदोलन में प्रवेश हुआ । आगे की घटनायें सर्वविदित हैं ।

आत्मरत जीवन की प्रेरणा का प्रारम्भ मैं ठीक से कह नहीं पाती, यह तात्पर्य तो ध्यान में आया ही होगा। बीज से पूछोगे कि फल तक कैसे पहुँचना हुआ। शायद जीने की आकांक्षा बीज में बल भर देती होगी जो वह अंकुर बनता है। कुछ-कुछ वैसा ही मेरे साथ घटित हुआ होगा। यह मेरा अनुमान मात्र है।

आज जहाँ हूँ वहाँ से इतना ही कहना सम्भव है कि मुझे जीने में खूब आनन्द आता है। प्रतिक्षण जीवन का स्पन्दन अद्भुत प्रसाद से अन्तस् को भर देता है। मनुष्य मात्र से मिलने में मज़ा आता है। मानो हर सम्बन्ध में चैतन्य की सरगम अनोखे ढंग से सुनने को मिलती हो। इसको कोई आध्यात्मिक जीवन कहे या भौतिक अनाध्यात्मिक जीवन कहे। मुझे जीने से मतलब है।

जीवन को अपने हाथों में पकड़कर विशिष्ट पद्धति में बाँध दूँ! उसकी व्याख्या करूँ। दूसरी पद्धतियों के साथ तुलना करूँ। उसकी श्रेष्ठता का वर्णन एवं समर्थन करूँ, इसमें रुचि नहीं। उतना समय भी नहीं।

कौन हूँ मैं और क्या हूँ मैं ?
न पूछो मुझसे, कोई न पूछो जी।
मृण्मय साज़ पर बजाया
चिन्मयका एक गान हूँ मैं ।।

विमलवन्दन
२५-४-१९६७

हे भगवान !! प्यारे भगवान
जीयरा मोरा मत तरसा
तरपत जीयरा रोवत दिल है
अब तो मोहे दरस दीखा !

बचपनमें लिखी गई सर्वप्रथम हिन्दी कविता

रोपे गये थे पंकमें।
फिर भी रहे निष्कलंक हम॥
तापमें संसारके फेंके गये।
फिर भी रहे सन्तुष्ट हम॥
नश्वर जगत्के मंचपर।
बनकर खिलाड़ी खेलते।
छद्मस्थ हैं जो सह, अरे
सामर्थ्य बने, रसमय रहे।

विमला ठक्कार

१. मैं हूँ विधाता की

मैं हूँ विधाता की एक कविता
मैं हूँ छन्दों का निज छन्द ।

आकाश जिसने संवारा ।
मैं हूँ यह निरालम्ब अवकाश ।

काल है जिसकी माया-लीला
मैं हूँ वह अनन्त अकाल ।

रूप में जो निखर उठा,
मैं हूँ वह रूपातीत स्वरूप ।

पंच प्राणों के साज़ पर चेतना गा उठी
मैं हूँ वह मधुर गीत ।

मृण्मय पर चिन्मय ने हाथ फेरा
मैं हूँ वह सहज स्पन्दन ।

विश्वचेतना अकारण झंकृत हुई
मैं हूँ वह अनायास कम्पन ।

२. जब न था सत्

जब न था सत्
न था असत् भी जब
तब जो कुछ विद्यमान था
वह मेरी साँसों में आज बोल रहा है ।

जब न था काल विकराल
न था अकाल का नाम भी
तब जो कुछ गतिमान् था
वह मेरे प्राणों में आज डोल रहा है ।

जब न था रूप-अरूप
न था रूपातीत निराकार भी
तब जो कुछ भास्वर था
वह मेरी आँखों में आज झलक रहा है ।

जब न था जन्म
न था मृत्यु का भ्रम भी
तब जो कुछ अपने में समाया था
वह आज मुझमें झनझनाता है ।

क्या हूँ मैं ? कौन हूँ मैं ?
न पूछो कोई मुझसे
मृण्मय साज़ पर बजाया
चिन्मय का एक गान हूँ मैं ।।

३. आख़िर क्यों ?

क्यों ?

आख़िर क्यों ?

मेरा क्या अपराध है ?

ज़हर उगलने वाले उगलते हैं

स्पर्धा का, क्रोध का, द्वेष का

और - आँतें मेरी भुनी आती हैं ।

आग लगाने वाले लगा जाते हैं,

नफ़रत की, हिंसा की, बर्बरता की,

और कलेजा मेरा झुलसता है ।

क्यों ?

आख़िर क्यों ?

मेरा क्या कुसूर है ?

जवान मरते हैं, मारे जाते हैं

वियतनाम, इंदोनेशिया, हिंदोस्ताँ में

और - कोख मेरी सूनी पड़ती है ।

आँसू बहते हैं, बच्चों के, बूढ़ों के, अपाहिजों के

और खून मेरी धमनियों में सूखता है ।

क्यों ?

आख़िर क्यो ?

भूलता है मानव सत्य, प्रेम, करुणा

और - हया से झुकता मेरा माथा है ।

४. मुक्ति का भ्रम

जाने कितनी सदियों से
मुक्ति का भ्रम चला आ रहा है ।
घोर भ्रम, जिसने जीवन का
रस ही सुखा दिया ।
घोर भ्रम, जिसने अकारण
जीवन को बन्धन बना दिया ।

देखती हूँ चारों ओर
सजग ओ' सतर्क होकर
बन्धन तो कहीं नज़र नहीं आता ।

षड्रिपु किसको कहते हैं ?
यह भी देखने गयी ।
कुछ संवेदन, कुछ स्पन्दन,
बस्स ! इतना ही तो देखा ।

तन को देखा, मन को देखा
बाँधने की सामर्थ्य उनमें
तनिक भी न देखा ।

शायद मुक्ति का भ्रमजाल
तो बन्धन नहीं है ?
शब्द गढ़े मानव ! और
उसी शब्द में खुद बँध जाय !

यह तो हुआ मकड़ी-जाल
इससे बाज़ आओ न भई !

देखते रहो नि:शब्द होकर
पाओगे-न बन्धन है, न मुक्ति
पाओगे-न ''तुम'' हो न ''तुमपन''
रह जायेगा सिर्फ़ देखना
किन्तु उस ''देखने'' में देखनेवाला''
तो रहता नहीं ।

क्यों उसे ''देखना'' कहा जाय ?
जो रहता है शेष वहाँ
शब्दों में कहना सम्भव नहीं ।
जो उतरेगा नदिया में
वही तो तिरेगा, या कि डूबेगा ।
किनारे जो ठूँठ-सा बैठेगा
उसको तिरना कैसे सिखाएँ ?

बिना नाम दिये रूप देखो
पाओगे अरूप का नूर वहाँ
देखने में अपने को खो जाने दो
पाओगे जीवन का मर्म वहाँ

५. मौन के द्वार

अद्वैत के गीत बहुत सुने
होता क्या है अ-द्वैत ?
कहते हैं -द्वैत के पार जाना
अरे भई ! आर हो तब तो
उसके पार जाओगे ।

द्वैत है कहाँ ? कोई कहो तो
कहते हैं - मन में भरा है !
और यह मन क्या बला है ?
देखने का करण है ।

करण-मात्र रहने दो उसे;
पहने वस्त्र दम घोंटने लगें
तो तारीफ़ पहनने वाले की ।

करण के बिना क्या
देखना होगा ही नहीं ?
होगा ज़रूर ! होता भी है !
मन के मौन में
दर्शन का प्रारम्भ है ।

न आर है कोई
न जाना कहीं पार ।
नाम-रूप-देश-काल
[illegible] की गढ़ी माया
सब मृगजल का खेल ।

न यात्रा है न यात्री
न द्वैत न अद्वैत
फिर है क्या ?
मौन के द्वार खोलो
मेरे भाई ! मौन के द्वार ।

तब पूछना न होगा किसी से
कि 'क्या' है शेष
नि:शेष शेष है, वहाँ
सब शून्यों का सार है
देखने का अन्त है वहाँ
सब दृश्य शान्त है ।

६. सहज स्पन्दन

कहते हैं सब पर प्रेम करो
प्रेम भी करना होता है ?
प्रेम भी कर्म है ?

मानव का ? 'अहं' तो देखो
कितना गहन गम्भीर !
कितना प्रबल जटिल !

वह प्रेम करेगा !
किस पर ? सब पर
यह 'सब' क्या है ? कौन है ?

अहं की पुष्टि के साधन
तन के घेरे में, मन के डेरे में,
कैद हुआ जीवन
घेरे को, डेरे को, देता है
निजता का दान

उसमें पला अहंकार
अपने को करता है अलग
''ममता'' के बाहर जो है
कहलाता है वह ''सब''
सब पर, इतरजन पर, फिर
अहं करेगा प्रेम
ग़ज़ब है मन की माया
गज़ब है मूढ़ मानव !

तुम क्या जानो प्रेम ?

प्रेम कर्म नहीं रे भाई

प्रेम ज्ञान भी नहीं ।

तन का घेरा ढह जाता है

मन का डेरा उठ जाता है ।

नीरव निगूढ मौन तब

मन्द मधुर हँसता है ।

मौन के आलोक से

आकृष्ट हो तब चेतना

सहज कम्पित, सहज स्पन्दित

प्रेम है वह सहज कम्पन

प्रेम है वह सहज स्पन्दन ।

७. अमर युगल

थी वह मौन की पूनम
थी ज्योत्सना प्रेम की
पूरे निखार पर;
था चेतन गहरी नींद में
मौन में था अचेतन डूबा
थी निगूढ़ नीरव शान्ति
था प्रसादमय आसमन्त
अनाविल अनावृत्त चिद्रूप
के चरण बढ़े धीरे
कि उधर विश्वसंवित्
के बढ़े हौले-हौले
मिले थे कर से कर वे
मिले थे अधर से अधर
तब से नहीं 'विमल' जीवित
न है विश्वसंवित् ।
चिरजीवित मधु चुम्बन पर
खिला एकता-लास्य
है अमर युगल का हास्य ।

८. खोजोगे तो

खोजोगे तो आय मिलूँगी
पल भर की तलाश में ।
ना खोजो तो जाय छिपूँगी
पलकों की शलाक में ।।

जागोगे तो आय चढ़ूँगी
साँसनकी मधु-सेज पै ।
सोओगे तो जाय छिपूंगी
हर धड़कन की ओट में ।।

देखोगे तो छलकूंगी मैं
सुरत शबद रसरंग में ।
ना देखो तो जा सोऊँगी
नाभि-कमल की नाल में ।।

९. रीत प्रीत की

रीत प्रीत की अग्निशिखा सम
ऊँचे-ऊँचे जावन की ।

रीत प्रीत की सागर-तल सम
गहरे-गहरे आवन की ।

रीत प्रीत की निर्मल नभ-सम
बिन बोले संग निवसन की ।

रीत प्रीत की कोमल जल-सम
अनबोले मल धोवन की ।।

१०. प्रतीक्षा है उसकी

प्राणों ने आहट पायी है,
जिसके सुमधुर पदरव की ।
आज प्रतीक्षा है उसकी ।। १ ।।

हृत्तंत्री झनझना उठी है,
छेड़ मधुर पाकर जिसकी ।
आज प्रतीक्षा है उसकी ।। २ ।।

अभ्यन्तर आलोकित मेरा,
पाकर प्रेम-रश्मि जिसकी ।
आज प्रतीक्षा है उसकी ।। ३ ।।

उन्मनि के भीगे पलकों में,
छायी छबि चिन्मय जिसकी ।
आज प्रतीक्षा है उसकी ।। ४ ।।

रूप अरूप में खो गयी सुध बुध,
मुखरित मौन गिरा जिसकी ।
आज प्रतीक्षा है उसकी ।। ५ ।।

११. कैसे कहूँ ?

किसको, कब,
कहो, कैसे कहूँ ?
जो कहने को अधर अधीर,
बतियाँ प्रेम की गहन गंभीर ।
कैसे ? कहो, किसको कैसे सुनाऊँ ?

रग-रग में प्रेम की धारा -
कहो, किसको कैसे दिखाऊँ ?
आँखों में अँसुवन धारा,
कहो किसके निकट बहाऊँ ?
दुःख दर्द का शूल है उर में -
कहो, किसको कैसे बताऊँ ?

१२. सुरतिया झूम रही

धरती गगन के बीच
सुरतिया झूम रही ।

गगन कहे "तू मुझ में समा जा"
धरती कहे "तू लौट के आ जा"

ना धरती की, ना गगन की,
झूम रही है बीच सुरतिया ।।

१३. आग हैं हम

क्रान्ति की इक आग हूँ मैं
खेल मुझसे ना करो
खेल ही के खेल में, कहीं,
जल उठे घर-बार सारा
खेल मुझसे ना करो ।

झुलसकर लपटों में इसकी
ख़ाक होगी ज़िन्दगी
बरबाद अपने आपको
अपने ही हाथों ना करो
खेल मुझसे ना करो ।

आँच में इस आग की
धोखे से जो भी आ गये
खोकर अमन ओ' चैन को
लुत्फ़े तबाही पा गये
खेल मुझसे ना करो ।

इश्क़ के परवाने हैं हम
मौत के दीवाने हम
शौक़ जीने से अगर है
दूर हमसे सब रहो
खेल हमसे ना करो ।

१४. महब्बत का मज़ा

लेते हैं ख़ुदा का नाम वो ही
जिन्हें महब्बत उसके होती नहीं ।
रग-रग में जिनके समाया ख़ुदा
नाम लेने की फ़ुर्सत वो पाते नहीं ।।

महब्बत का मज़ा वो क्या जानें
जो बोझ ''ख़ुदी' का ढोते हैं ।
इश्क़ का मज़ा तो वे जानें
जो घोल ख़ुदी को पीते हैं ।।

महब्बत जतलाने की है बात नहीं
होश है किसे, जो जतलाये ।
महब्बत करने की है बात नहीं
हो जाती जिसे, वही जाने ।।

महब्बत का हो जाना
बख़्शा जाता है जिन्हें ।
नशा मौते-जाम
पिलाया जाता है उन्हें ।।

१५. अलबेली बहती धारा

ज़िन्दगी है एक अलबेली बहती धारा ।
मंज़िल के क़ायलों का यहाँ गुज़ारा नहीं
इल्म-हुनर वाले तो ज़रा भी गवारा नहीं ।

मौजे-बहार का जो आशिक़ हो
ज़िन्दगी बस उसकी क़ायल है ।

मौजे-बोसो-कनार का जो घायल हो -
ज़िन्दगी बस उसकी क़ायल है ।

मुक़ाम ढूंढने वालों की मौत यहाँ -
फ़िल्सुफ़ी के बंदों की क़ब्र यहां ।

नरगिसे-बीमार का नज़ारा है यहाँ -
आशिक़-मिज़ाजों का बस गुज़ारा है यहाँ ।

१६. बेबाक़ हो गये हैं

हम बेबाक़ हो गये हैं
लेना-देना किसी से कुछ नहीं ।
हम बेबाक़ हो गये हैं ।

काल का इंतिक़ाल करके
हम अकालसे खेलते हैं
हम बेबाक़ हो गये हैं ।

मौत को दीदार दे अपना
हम बेमौत हो गये हैं
हम बेबाक़ हो गये हैं ।

बना इश्क़ हमारा आशिक़
और माशूकों की महफ़िल से
हम उठ गये हैं
हम बेबाक़ हो गये हैं ।

१७. रूहानी मुसकान

हर नज़र के जलवे में रोशन हो जब
तेरा पर्दे में छिपाना है किस काम का !
हर जिगर की धड़कन में बोलते हो जब
ख़ामोशी का बहाना है, किस काम का ।।

इस सूरज की रौशनी में तेरा नूर है
औ' चन्दा की चाँदनी में तेरा हुस्न है ।
ज़र्रे ज़र्रे की रूहानी मुसकान में
तेरी-मेरी महब्बत का अंजाम है ।।

१८. कोई समझा तो दे

ज़िन्दगी किस बला का नाम है ?
कोई सयाना ज़रा हमें समझा तो दे –

क़दम रखा है जब से दुनिया के बाज़ार में –
सौदा मौत का देखा है हमने हर आँख में ।
मौत से बचने के रास्ते हर कोई ढूंढता –
मंदिर-मसजिद में हर कोई है भागता –
क्या बचने रहने की कोशिश को जीना कहें –
कोई सयाना ज़रा हमें समझा तो दे –

हमेशा हर इन्सान को इन्सान से डरते देखा ।
हमेशा हर इश्क़ को कशिश से काँपते देखा ।
झूठ को तहज़ीब के नकाबों से झाँकते देखा ।
घमंड को इल्म-हुनर के झरोखों से झाँकते देखा ।
क्या छिपने-झाँकने की कोशिश को जीना कहें –
कोई सयाना ज़रा हमें समझा तो दे –

१९. बेमतलब की ज़िन्दगी

बेमतलब दिन आते और चले जाते हैं
बेमतलब हैं रातें - भागती फिरती
बेख़बर हम जीते चले जा रहे हैं
बेहिसाब है साँसों की माला घूमती ।

बाख़बरदारों की दुनियाँ है यह
बेख़बरदारको इसमें ठौर कहाँ ?
बाहोश बरतने वाले हैं सब
बेहोश का कौन है साथी यहाँ ?

रहते हैं सब के बीच
खोये-खोये से हम ।
जानते हमें हैं सब कोई
अपने आपको अजनबी पाते हैं हम ।

२०. साक्षित्व

जहाँ किसी भी प्रकार की द्वैत-भावना का
प्रवेश ही नहीं,

जहाँ काल को पाँव रखने का अवकाश
ही नहीं है,

जहाँ अहं के स्फुरण को अवसर ही
नहीं है,

जहाँ चित्त या बुद्धि को जन्म पाने की
आशा ही नहीं है,

जहाँ सहज समाधि का अबाधित
साम्राज्य है ।

सहजता के पट पर—वहाँ, व्यवहार
के चलचित्र अंकित होते रहते हैं ।
प्रतिक्रियातीत सहज व्यवहार साक्षित्व
की अनिवार्य अभिव्यक्ति है ।

२१. किसी ने पूछा

किसी ने पूछा –"ध्यान कैसे किया जाय ?"
प्रश्न सुन कर मुझे आश्चर्य हुआ ।
ध्यान कोई कर्म है जो किया जाएगा ?

कर्म में कर्ता की सत्ता अभिप्रेत है ।
कर्ता और कर्म के बीच समय खड़ा होता है ।
कर्ता और कर्म का सम्बन्ध अवकाश का
सर्जन करता है ।

जहाँ समय एवं अवकाश का प्रवेश है,
वहाँ मन का ताण्डव चलता है ।
मन की उपस्थिति में ध्यान असम्भव होगा
मन की सम्पूर्ण अनुपस्थिति ही ध्यान का
अधिष्ठान है ।

मन के न होने में, मौन में ध्यान
का उदय है ।
ध्यान का होना एक अद्‌भुत अनुभूति है ।
ध्यान में समग्र व्यक्तित्व सहज संतुलन
से भर जाता है ।
सहज संतुलन में स्वयंभू शान्ति का
प्रसाद है ।

शान्ति से सुरभित संतुलन जब

श्वास-नि:श्वास की लय में ताल देता है,

तब ध्यान सध गया ऐसा समझा जाय ।

ध्यान होता है, किया नहीं जाता ।

ध्यान खण्डित हो ही नहीं सकता ।

सहज सावधानता का संगीत

ध्यान का अनिवार्य परिणाम है ।

ध्यानावस्था का परिचय –

(१) सहज सहृदय सावधानता

(२) सहज समग्र सन्तुलन

(३) सहज स्वयम्भू शान्ति

२२. किसी ने कहा

किसी ने कहा – ध्यान में आप क्यों बैठते हैं ?

मैंने कहा – आनन्द आता है बैठने में ।

स्नान में आनन्द है, वैसा ही आनन्द ध्यान में आता है ।

पूछा गया – बैठ कर करते क्या हैं ?

– कुछ भी नहीं ।

सवाल आया – मान लीजिये हम भी बैठ गये । फिर बैठकर क्या करें ? मन तो इधर-उधर दौड़ता है । - दौड़ते हुए मन को निश्चितता-पूर्वक देखें ।

सवाल आया – देखने से क्या होगा ?

– वह अभी कैसे समझ सकोगे ?

कैसे बताया जा सकेगा ? बैठकर देखा तो जाय क्या होता है ?

सवाल हुआ – देख लिया । फिर आगे क्या करना, यह तो समझाइए ।

– वह समझाया नहीं जा सकता ।

कोई गणित है जो बना-बनाया है ?

आप शान्ति–पूर्वक एक स्थान में मौन बैठकर मन का खेल देखना शुरू कीजिये । बाद में सोचा जायेगा कि अगला कदम कोई है या नहीं ।

मौन के अथाह सागर में बिना डूबकी
लगाये ही सवाल पूछते हैं । सागर के
किनारे खड़े होकर तैरना सीखना चाहते हैं ।
यह intellectual menia (बुद्धि का पागलपन) आज के विश्व
की व्याधि है ।
मन को प्रत्यक्ष नाचते हुए देखना, उसकी हर हरकत की जड़ में
छिपी हुई वासना को समझना एक अद्‌भुत अनुभूति है ।
यह समझने की घटना समय व्यक्तित्व को झकझोर कर बदल
देती है ।

ध्यान में बैठकर अवलोकन एवं आकलन को उन्मुक्तता से विहार
करने का अवसर देना एक महान् पुरुषार्थ है ।

अवलोकन में मूल्यांकन रहता नहीं । आकलन में प्रतिक्रिया का
स्थान नहीं ।
जितनी तटस्थता होगी उसके अनुपात में अवलोकन होगा ।

जितनी नम्रता होगी उसके अनुपात में आकलन होगा । इसलिये
प्रतिदिन किसी प्रशान्त स्थान में मौनपूर्वक बैठकर शान्ति सागर में
गोता लगाया जाय ।
अभ्यन्तर का प्रक्षालन किया जाय ।

२३. चिरमिलन

जो मिलते हैं वे कभी बिछुड़ते नहीं ।
चिर निकटता का अनुभव प्रेम का पवित्र लक्षण है ।
राग यानी आसक्ति हो, तब वियोग सम्भव है ।
राग में ममत्व का भाव अन्तर्भूत रहता है ।
इसलिये शरीरके वियोग से मन विरह का कष्ट पाता है ।
प्रेम में चिरमिलन है, क्योंकि प्रेम परस्पर-आकलन की सुगन्ध है ।

आकलन कभी निवृत्त होता नहीं ।
इसलिये प्रेम में चिर सहवासका सहज अनुभव आता है ।
मानव के अन्तरंग में इस प्रेम-पुष्प का पूर्ण विकास समस्त जीवन को सुरभित बनाता है ।
प्रेम के प्रकाश से बाह्य जीवन भी आलोकित होता है ।

२४. आत्मा की भाषा

यह सच है कि हृदय के भाव शब्दों में अंकित करना बहुत कठिन है ।

मौन ही आत्माकी असल भाषा है । प्रेम को शब्द का स्पर्श भी सहन नहीं होता ।

लेकिन हमको प्रेम का अनुभव बहुत कम होता है । जिस क्षण प्रेम अन्तस्तल को स्पर्श करता है, सारा व्यक्तित्व झनझना उठता है ।

समस्त प्राण झंकृत हो उठते हैं । प्रेम को हम सहन नहीं कर पाते । इसलिये व्याकुल होकर अभिव्यक्त करने को छटपटाते हैं ।

इन्द्रियाँ प्रेम व्यक्त करने मे असमर्थ हैं, इसलिये हम अभिव्यक्ति के बाद भी अतृप्त रह जाते हैं ।

जैसे-जैसे प्रेम गहरा पैठता जाता है, अभिव्यक्तिकी लालसा घटती जाती है ।

अनुभूति में परितृप्ति पायी जाती है ।

२५. वीतरागता

वीतराग का सहज शुद्ध प्रेम हमें उपलब्ध हो ।

जब तक राग-द्वेष से चित्त मलिन रहता है तब तक वीतरागता विकसित नहीं होती ।

वीतरागता का ही दूसरा नाम प्रेम है ।
प्रेम की अग्नि में वासना-विकार भस्मसात् होते हैं ।
प्रेम के प्रकाश का नाम ज्ञान है ।

जब तक प्रेम की अनुभूति नहीं, तब तक बुद्धि शब्दों का बोझ ढोती है ।

लोग शब्द-संग्रह, विचार-संचय तथा भावना-वैभव को भूल से ज्ञान मानते हैं ।

सच्चे ज्ञान में विचार का अन्त है, भावना का लय है ।
वैराग्य, प्रेम, ज्ञानहृये सब एक होने पर सहज समाधि में
मनुष्य पहुँचता है ।

व्यवहार में रहते हुए ही यह साक्षात्कार हो सकता है ।

२६. मौन का संगीत

मौन एक अद्‌भुत वस्तु है ।
मौन का सम्बन्ध मन से अधिक है, शरीर से कम ।
भूतकाल की स्मृति तथा भविष्य के सपने - इन दोनों से
मन का मुक्त होना मौन है ।
मौन का अर्थ संन्यास है ।
घर में रहकर सब काम करते हुए अन्तरंग
मौन में लीन हो जाय तो जीवन में एक अनिर्वचनीय आनन्द का लाभ
होता है ।
आनन्द का प्रकाश संसार का रूप बदल देता है ।
मौन के संगीत से अन्तरंग के
ओत-प्रोत होने में जीवन सार्थक है ।

२७. तुम नहीं समझोगे

तुम नहीं समझोगे कि मैं कौन हूँ,
हाड़-मांस के ढाँचे में फँसी जो हूँ ।

तुम नहीं जानोगे कि मैं क्या हूँ,
नाम-रूप के आवरण में बँधी जो हूँ ।

तुम नहीं पहचानोगे कि मैं प्रभु हूँ,
आकार के परदे में छिपी जो हूँ ।

२८. अब मुझे जाना ही है

तुम सबके बीच मैं एकाकी हूँ,
तुम सब मूर्च्छित जो पड़े हो ।

तुम सबके बीच मैं अकेली हूँ,
तुम हिलती-डुलती लाशें जो हो ।

तुम सबके बीच मैं रो रही हूँ,
तुम प्रकृति के दीन-हीन दास जो हो ।

इसलिये कहती हूँ मुझे जाना है ।
मुर्दों का साथ अब सहा नहीं जाता,
अब मुझे जाना ही है ।

२९. मृत्यु बुला रही है

तार हृदय के छेड़े किसने ?
प्रेम-कलश छलकाया किसने ?
आज हुआ क्या ?हृअन्तरतम में
यह तूफ़ान जगाया किसने ?

मुझे न भाती अब यह धरती
आसमान भी प्रिय नहि लगता
कोमल तन चुभता है मुझको
मन में रह-रह टीस है जगती ।

आज कहाँ का मधुर निमन्त्रण
खींच रहा है मुझे पार से ।

मुझे न भाते स्वर गीतों के
कविता की प्रियता न रही अब
मौन की वीणा छेड़ सुनहली
कोई मुझे अब बुला रहा है ।

मुझे न भाते धर्म-कर्म अब
ज्ञान-ध्यान से प्रेम नहीं है
जन्म-मरण के दूर कूल से
मुझको कोई पुकारता है ।

आत्मा की नौका में माँझी
कब से बैठा निपट अकेला
खेता था मँझधार में नैया
(अब) धारा में डगमग प्राणों को
लो, सागर-तल बुला रहा है ।

सुन्दर होगी धरती तुम्हारी
होंगे सुन्दर नभ के पंछी
सुन्दर होंगे सप्त समुन्दर
होंगे सुन्दर वन-उपवन भी ।

नहीं शिकायत मुझे किसी से
फिर भी घर की प्यास जागी है ।

सबने मुझको प्यार किया है
अंजुलि भर आदर भी दिया है
नहीं शिकायत मुझे किसी से
फिर भी मृत्यु बुला रही है ।

३०. नन्दादीप

कहते हैं सत्य कठोर न हो,
मृदु हो, प्रिय हो ।
सत्य कठोर हो सकता है ऐसा क्यों माना जाय ?

चट्टानें तोड़कर जल-स्रोत फूट पड़ता है ।
जल को कठोर कहोगे ?

छोटे-से दीपक की छोटी-सी ज्योति
घने अँधियारे को चिरती चली जाती है ।
प्रकाश को कठोर कहोगे ?

नन्हे से बालक की सुनहली मुस्कान
वज्र हृदय को विगलित करती है ।
उस निष्कलंक स्मित को कठोर कहोगे ?

सत्य कठोर हो ही नहीं सकता
सत्य के पास दया-माया भी नहीं रहती ।

क्रूरता के आँचल में दया खिलती है
निष्ठुरता की छाया में माया फैलती है ।
सत्य यानी आलोक
सत्य यानी प्रेम का प्रज्वलित नन्दादीप ।

३१. नवविध भ्रम

सभी सद्गुण भ्रमजनित होते हैं –
हृदय की गहन गुफा में अज्ञात का भय रहता है
यह देख मानव ने '**धैर्य**' निर्माण किया ।
चित्त में अहंकार का भूत नाचता है
यह देख मानव ने '**विनम्रता**' जगाई ।
प्रभुत्व की आकांक्षा से बुद्धि सुलगती रहती है
यह देख मानव ने '**त्याग के स्तोत्र**' रचे ।
कल्पना हृदय में दु:ख का जाल बुनती रहती है
यह देख मानव ने '**विराग की महत्ता**' प्रतिष्ठित की ।
आनन्द के उद्रेकका अभिलाप अन्तरंग में लहराता है
यह देख मानव ने '**संयम**' की महिमा गायी ।
प्रामाण्य का आग्रह बुद्धि को उलझाता रहता है
यह देख मानव ने '**श्रद्धा की अनिवार्यता**' उद्घोषित की ।
विचार की चौखट के पीछे मन दौड़ता रहता है
यह देख मानव ने '**निष्ठा**' का गुणगान किया ।
बुद्धि जड़ चेतन के भेद का आभास जगाती है
यह देख मानव ने '**अध्यात्म**' का जाल बुना ।
स्वयं ही बन्धनों का चक्रव्यूह रचता चला गया
और उससे भय पाकर, विकल होकर
मानव '**मुक्ति**' के मृगजल की खोज में भटकता रहा ।

३२. जो समरस हुआ

अनुभूति के साम्राज्य में शब्द तिरोहित होता है
संज्ञा नामशेष होती है, संकेत विलीन हो जाता हैं ।
शब्द के सिर पर 'भूत' का भूत सवार रहता है,
पीठ पर परम्परागत अर्थ का बोझ रहता है,
गोद में संकेत और लक्षणाएँ छिपी रहती हैं ।
विशुद्ध, निर्लेप एवं सर्वथा मुक्त शब्द मिल ही नहीं सकता ।
और एक तमाशा है –
शब्द का अर्थ कौन प्रकट करेगा ?
जो अर्थ का साक्षी होगा वही शायद कर सकेगा –
किन्तु साक्षी तो जीता नहीं है
पल-पल में अभिनव स्पन्दनों के परिधान पहनने वाले
जीवन-तरंगोंका मर्म क्या 'साक्षी' समझाएगा ?
स्थितप्रज्ञा के किनारे अलिप्तता से बैठा हुआ –
निरन्तर बहने वाले जीवन का अर्थ कैसे समझेगा ?
जो जीवन से समरस हो गया, वह कैसे बोलेगा ?
बोलने के लिये वहाँ कोई शेष रहे तब तो !
मौन ही निरूपाधिक जीवन की एकमात्र भाषा है ।

३३. चैतन्य के साम्राज्य में

'आज' यानी इस क्षण का विस्तार
बीता 'कल' यानी स्मृति-गौरवित शव-सम्भार
आने वाला 'कल' यानी कल्पना द्वारा आरोपित स्वप्न-शृङ्गार ।
वस्तुत: वर्तमान, भूत और भविष्य यह सब मन की माया
यह सब कल्पना का विलास ।
निर्देश की पकड़ में और संकेत की पहुँच में
जीवन आयेगा ही किस प्रकार ?
'है' और 'नहीं' के आवरण में
जीवन लपेटा जायेगा किस प्रकार ?
क्षणों की कैंची से काल को काटकर
उसके टुकड़े करेंगे किस प्रकार ?
इसलिये कहती हूं मन की माया पहिचानो
मन के आकलन में उन्मनी का जन्म है
चित्त के विलोपन में चैतन्य का विस्फोट है
उस अनवच्छिन्न अनवरुद्ध चैतन्य के साम्राज्य में
काल स्वयमेव विलीन होता है
उस चैतन्य के स्पर्श में अवकाश स्वयमेव खो जाता है ।

३४. सहजानन्द

द्वैत-बुद्धि के जैसी अद्वैत-बुद्धि भी अनर्थकारिणी;
द्वैत-बुद्धि एकरस सृष्टि में भेद का भूत जगाती है –
जड़-चेतन के भेद की कल्पना से समरसता को रोकती है ।
द्वैत के जगाये हुए और भक्ति के पाले हुए भेद के भूत को
सत्य समझकर अद्वैत बुद्धि एकता का राग छेड़ती है ।
द्वैताद्वैत के भ्रमजाल से मुक्त हो जाओगे
बुद्धि निर्भ्रान्त बना लोगे, तब अन्तरंग में
सहजानन्द के पावन प्रभात का उदय होगा ।

३५. संजीवनी

अपने गहरे नीले कलेवर पर
श्वेत बादलों की सुवर्ण-जटित चादर ओढ़कर
आकाश नितान्त सुशोभित है ।
अनाविल सूर्य-किरणों में सद्य: स्नात आकाश की मुस्कान है
''सिल्वर ओक'' की घनी, हरी शाखाओं में
कितने ही पंछी चहचहा रहे हैं
खजूरी के ऊंचे-ऊंचे पेड़ों पर कृष्ण-वर्ण बन्दर
अकारणही कूदते-फाँदते हैं ।
कोई, कहीं दूर, वंशी बजा रहा है
उसके कोमल स्वरहवा में तैर रहे हैं
पूरब में पहाड़ी की एक चोटी कत्थई रंग की
नितान्त नाजुक शाल लपेटे खड़ी है;
उसकी मतवाली सुषमा से मेरा चित्त उन्मत्त है
कमरे में जूही के पुष्प मुस्कुरा रहे हैं
उनकी सुगन्ध से आसमन्त सुरभित है
जाने कैसे, जीवन का प्रसाद सर्वांग में महक रहा है
जीवन की संजीवनी दृष्टि में से छलक रही है
स्पर्श में आन्दोलित हो रही है ।

३६. वारुणी

अंजलि-पात्र भर-भर के मैं
सुख-दु:ख की दारुण वारुणी पी चुकी हूँ;
सुख के साथ दु:ख उतना ही सहज है
जितनी प्रकाश के साथ छाया
सुख की छाया ही तो दु:ख है
दु:ख-विरहित सुख कभी किसी ने पाया है ?
सुख का कालकूट और दु:खका हलाहल
मैं अंजलि-पात्र भर-भर के पी चुकी हूँ;
उस वारुणी का नशा मैंने देखा है
उस गहन विष की ज्वाला में मैं झुलस चुकी हूँ ।

सज्जनोंने, आप्तजनों ने कहा –
सुख पर संयम का उपचार करना चाहिये ।
यति-संन्यासियों ने कहा –
विराग के अनुपान से ही सुख का सेवन करना चाहिये
साधु-सन्तों ने उपदेश दिया –
दु:ख-सेवन में श्रद्धा का अनुपान अनिवार्य है
भक्त-भागवतों ने विकल होकर कहा –
शरणागति से ही दु:ख-संहार सम्भावित है
धर्म-मार्तण्डों ने साग्रह सूचन किया –
तप-तितिक्षा के बल पर सब कुछ सहनीय है ।

नम्र जिज्ञासा से मैंने सब बातें सुनी - किन्तु
मुझे सुख-दु:ख के उपचारोंकी ज़रूरत नहीं थी ।
मुझे सुख-दु:ख से संरक्षण अपेक्षित नहीं था
मुझे सुख-दु:खके अतीत जाना भी अभिप्रेत नहीं था ।

सुख में जिसकी हँसी निखर उठती है –
दु:ख में जिसके आँसू बिखर जाते हैं –
उस जीवन का मुझे निगूढ़ आकर्षण था
उसके साक्षात्कार की मुझे उत्कट आकांक्षा थी
निरन्तर गतिशील जीवन के स्पर्श के लिये
मेरे सर्वांग में आतुरता का तूफ़ान जाग उठा था

इसलिये मैंने सुख-दु:ख का स्वागत किया
दिल खोलकर सम्पूर्ण जागृति में दोनों से मिली ।
सुख का उन्माद और दु:ख का नशा अपने ऊपर
चढ़ने दिया,
लेकिन उस नशे में भी मेरा होश बना रहा
ऐसा होश जिसे बेहोशी छू ही न सकी ।
उस सावधानता के आलोक में एक आश्चर्य
घटित हुआ;
सुख-दु:ख के आवरण हटाकर अनावृत्त जीवन
प्रकट हुआ –
बाहें फैलाकर हम एक-दूसरे से मिले
और दोनों ही उस मिलन में विलोपित हो गये ।
पूछोगे कि शेष क्या रहा ?
उसका मुझे ज्ञान नहीं
उसे शून्य कहूं या पूर्ण –
यह भी मुझे मालूम नहीं ।

३७. उसके बाद ?

मन मुक्त हुआ
बुद्धि शुद्धि हुई
अवधान सध गया
संवेदनशीलता सक्षम हुई
लेकिन उसके बाद ?
मुक्ति कोई मंज़िल है –
कि जहाँ पहुँचकर ठिठक जाओगे ?
स्थिति एवं गतिसे सर्वथा भिन्न –
निरपेक्ष जीवन ही मुक्ति है

शुद्धि जड़ता है –
कि जहाँ पहुँचकर जीवन रोधित होगा ?
जड़ता एवं निष्क्रियता से सर्वथा भिन्न
प्रांजल उन्मुक्त जीवन ही शुद्धता है
अवधान शून्यता है –
कि जहाँ पहुँचकर अभाव से घिर जाओगे
शून्यता एवं रिक्तता से सर्वथा स्वतन्त्र
सहज स्वाधीन जीवन ही सावधानता है
संवेदनशीलता बधिरता है –
कि जहाँ पहुँचकर जड़ें जमा लोगे ?

बधिरता एवं पंगुता से सर्वथा विभिन्न
विशिष्ट जीवन ही संवेदनशीलता का सक्षम होना है
इसलिये कहती हूं –
''उसके बाद क्या ? यह प्रश्न अर्थहीन है
न कुछ पहले है न कुछ बाद
न आज है न कल
न अनुकूल है न प्रतिकूल
जीने में ही जीवन की परिपूर्ति है
चरण उठाकर चलने में ही –
यात्रा की फलश्रुति है ।

३८. एकाकी

आप्तकाम का नीरव एकान्त !

अभेद्य, अक्षोभ्य, अविचल !

जनसमूह के घोर सम्पर्क में

अविच्छिन्न समाधि का एकान्त !

इस एकान्त का एकाकी प्रवासी

होता है - पथहीन, दिशाहीन, लक्ष्यहीन !

इस एकाकीकी जीवन-यात्रा

रहती है – नि:शब्द, निगूढ़, निरवधि !

एकाकी अलग और अकेला अलग

अकेलेपन में संगति की अभीप्सा चीत्कारती है

एकाकीपन में जीवन की पूर्णता छलकती है

अकेलेपन में साथी की प्रतीक्षा छटपटाती है

एकाकीपन में परिपूर्ति की ज्योति प्रज्वलित है

अकेलेपन में रिक्तता का भूत सताता है

एकाकीपन में मौन का संगीत अनुनादित होता है

इसीलिये मेरी जीवन-यात्रा का अर्थ
स्नेहीजन समझ नहीं पाते
मेरी जीवन-यात्रा का मार्ग
आप्तजन देख नहीं पाते
मेरी जीवन-यात्रा का क्रम
साथी संगाती खोल नहीं पाते
सखाजन साथ मेरे जी नहीं पाते
इसीलिये मेरे सहवास का सुख उनको मिलता नहीं
साथ रहने वाले, मेरे शब्द समझ नहीं पाते
इसीलिये उनको संवाद का सुख मिलता नहीं
किन्तु मैं विवश हूँ
एकान्त-एकाकी पथिक की यह निर्हेतुक यात्रा
ऐसी ही चलती रहेगी ।

३९. उन्मीलन

मेरा मुकुलित जीवन आज खिल उठा है
क्यों ? कैसे ? – मैं नहीं जानती

दश दिशाओं में सौरभ फैल रहा है
उसे कैसे छिपाऊँ – मैं नहीं जानती

लावण्य की ऊर्मियाँ उमड़ रही है
उनको कैसे समेट लूं – मैं नहीं जानती

आनन्द का ओघ अनावृत्त हो उठा है
उसको कैसे रोकूँ – मैं नहीं जानती

मौन की स्वरावलि उन्मुक्त हो उठी है
उसको कैसे शान्त करूँ – मैं नहीं जानती ।

अनवरुद्ध चैतन्य झिलमिला उठा है
रोधित होना चैतन्य का धर्म ही नहीं

सुरभित जीवन उन्मीलित हो उठा है
सिमट जाना जीवन का धर्म ही नहीं

४०. विशुद्ध जीवन

सकल गतियों की गति
जहाँ माँगे शरणागति
उसकी सुगठित आकृति
मैं हूँ स्वयं भाव से

समय की हटती स्मृति
जहाँ काल पाता शान्ति
उस अनन्त की आकृति
मैं हूँ सहज भाव से

सबको है जिसका ध्यान
मूर्त मात्र को जिसका भान
उस अमूर्त की मूर्ति
मैं हूँ निज भाव से

शब्द मात्र मौन होते
परा पल भर ठिठक जाती
उस नादब्रह्म की स्थिति
मैं हूँ अनायास ही

पसारे आँचल जीवन्मुक्ति
गावे निर्वाण भी संस्तुति
उस विशुद्ध की चरम स्थिति
मैं हूँ अनजाने ही

४१. आर्त पुकार

आओ रे आओ
कोई तो आओ
मेरी यह आर्त पुकार
कोई तो सुनो ।

हित है तुम्हारा मुझ अन्तर में
प्रतिसाद कोई तो दो रे
चित्त से सुनो अरु देखो बुद्धि से
अवधान - आलिङ्गन दो रे ।

द्वार पर दिक्काल के
मैं हूँ खड़ी युग-युग से
मुझे कोई तो याद करो रे ।

४२. ज्ञानदीप

हृदय में ज्ञानदीप जलाओ
शत-शतकों का तम सुलगा दो
भूत भविष्य का अन्तर तोड़ो
और अंतर प्रक्षालित करो ।

प्रतिपल दृष्टि के द्वार पर सोत्कण्ठ
खड़े चैतन्य को गौर से निहारो
अणुरेणु में स्पन्दित चैतन्य से
तुम्हारी समग्रता को खिलने दो ।

४३. स्पन्दित मौन

अनुरक्ति के कपोलों की आरक्तता

और

विरक्ति के ललाट की प्रदीप्तता

मेरे चित्त-चषक में पूरी भरी हुई है ।

तीर्थ-क्षेत्रों के जल की पावकता

और

ऋषि-मुनियों के चित्त की पावनता

आज मेरी आँखों में से छलक रही है ।

वेदोपनिषदों के शब्दों की उन्मुक्तता

और

योग-योगेश्वरों के उन्मेषों की उत्स्फूर्तता

आज मेरे हृदय में ओतप्रोत है ।

चाँद और सूरज की किरणों की प्रभा

और

भक्त-भागवतों की करुणा की आभा

आज मेरे रोम-रोम से झर रही है ।

मेरी अहंता जाने कहीं खो गई है

और

विश्व का निगूढ़ मौन ही

इस देह के रूप से स्पन्दित हो रहा है ।

४४. प्रेमशिखा

सभी धर्म हो गये अस्त
नीति-शास्त्र हो गये स्तम्भित
यह जीवन हो गया निर्धर्मी, निर्नीति ।
सभी मार्ग बिखर गये हैं
पन्थों ने सब, पाया विश्राम
यह जीवन हो गया निर्मार्ग, निष्पन्थ ।
काल ठिठक गया है
दश-दिशाएं हुई विलीन
यह जीवन हो गया निष्काल, दिशातीत ।
सभी संस्कार सूख गये हैं
कर्तव्यों ने पाया पूर्णविराम
प्रेमशिखा निर्धूम जल रही है
यह जीवन हो गया दीप्तिमय, आलोकमय ।

४५. अमृत-धारा

आज अंतरंग में अमृत-धारा
हिलोरें ले रही है; उसके कल्लोल से
तीनों भुवन भीग गये हैं ।
आज अनुभूति के निर्झर में
चारों वाचाएँ नहा आई हैं
शब्दों के परिधान उतारकर
उन्होंने मौन वसन पहन लिये हैं ।
आज दिक्काल के उस पार
अपार्थिव आनन्द का समारोह है
शब्द-बन्ध तोड़कर, चित्त
चैतन्य की बाहों में समाधिस्थ है ।

४६. दिक्काल के उस पार

दिक्काल के उस पार
अकाल में, अनन्त में
मेरा ध्यान लग गया है
अनन्त का शब्द-स्वरातीत गीत
हृदय में निनादित हो रहा है
मेरा ध्यान वहाँ चला गया है ।
आज हृदय की वीणा को जीवन ने छेड़ा
उसमें बँधे प्राणों की झंकार में
आज मेरा ध्यान अनायास चला गया है ।
सहजानन्द के असीम सागर में
आज अखिलाई डूब चुकी है
जन्म-मरण का हिसाब पूरा कर
''विमल'' मुक्त हो गई है ।

४७. जागत जिस पल

जागत जिस पल प्रीत हृदय में ।
'षोडशी' हांसत तन मन में ।।

एक, अनेक में दरस दिखावत ।
भरम मिटावत भेदन के ।।

अहं विलेपन योग सिधावत ।
खेद हटावत मरणन के ।।

शब्द शब्द में मौन खिलावत ।
शून्य जगावत अंतर के ।।

विमलानंद स्वरूप उधारत ।
प्रीत लुटावत सबजन के ।।

४८. गुरु तत्त्व में

गुरु तत्त्व में पूर्ण श्रद्धा
रक्खी जिसने सर्वदा ।
उसके हित के प्रति
सावधान, गुरु परात्पर सदा ।।१।।

गुरुपद है सदा-शिव ।
गुरु तत्त्व है सदा-शिव ।
श्रद्धा भक्ति रहे सदा-शिव में
अव्यक्तानंत परात्पर में ।।२।।

निज काया में खोजो पर को
चिदाकाश में खोजो शिव को ।
शिवो भूत्वा यजेत् शिवम्
सद्गुरु भूत्वा भजेत् गुरुम् ।।३।।

४९. जीवन की यह अजस्रधारा

जीवन की यह अजस्र धारा
जन्म में श्वास –
मृत्यु में उच्छवास –
लेती, छोडती, अमृत बहाती है ।
जन्म मरण के तरंगो में
अजर अमर जीवन छलकाती है ।

० ० ०

मृदु मंद मुस्कान –
करुण अश्रुसिक्त रुदन –
वेदना - व्यथा भरी पीडा –
उत्तेजना – हर्ष भरा हास्य –
सम्बन्धों में प्रतिफलित यह सब कुछ
इसमें जीवन का स्पर्श है ।

० ० ०

दूधिया रंग के बादल –
फीकी निष्प्राण धूप –
सोई पडी कंदरायें –
गूंगी बनी वनराजी –
पक्षीओं की मौन आंखे –
बर्फिले पवन के झोंके –
इस बार यही उपहार है – हिमांचल का ।

५०. वेद विदेह सदेह हुए

वेद विदेह सदेह हुअे ।
रूप विमल धर प्रगट भये ।

रवि शशी सम दोउ उज्वल नैना ।
अमल कमल सम कोमल बैना ।

विमल गिरा पुनि मंत्र समानी ।
कर्म विमल जिमि गंग पावनी ।

जनम करम सब मंगल गाथा ।
सुनहिं सो नर पावन होई जाता ।

विमल जीवन था सहज समाधि ।
विमल मरण था योग समाधि ।

५१. जीवन की इस मधु सन्ध्या में

जीवन की इस मधु सन्ध्या में –
घट से जीवन रस छलके ।।

चित्त में संचित जीवन सौरभ –
सुरभित काया को कर दे ।।

दो नयनों की मधुशाला में –
पलकों की प्याली छलके ।।

मौन निलय में परा मात के –
मुग्ध नाद बिन्दु प्रगटे ।।

पश्यन्ती में हो अभिसिंचित –
मुखरित मध्यम में गूंजे ।।

स्फुट वैखरी में अमृतधारा –
रसमय संजीवक प्रवहे ।।

दशेंद्रियो से छलके हरिरस –
सन्ध्या हरिमय दीप्ति धरे ।।

जीवन की इस मधुसन्ध्या में –
घट से जीवन रस छलके ।।

विमल विलास रसेश्वर हरि का –
जन्म मृत्यु महारास बने ।।

५२. यह कैसी कहो निठुराई

यह कैसी कहो निठुराई –
आये नहीं श्याम कन्हाई ।।
मन मटुकी ले सिरपर भारी –
काया कालिन्दी तट ठाडी –
कब से वाट निहारी –
आये नहीं श्याम मुरारी ।।

बन ठन मानो व्रज को नारी –
ढूंढन निकली नजरें मोरी –
ढूंढा गोकुल मथुरा नगरी –
पाये नहीं सखि गिरिधारी ।।

सर्वाकार बने सांवरिया –
सब रूप गये समाई –
नीलवर्ण नभ रूप बने कहीं –
सागर की गहराई –
कैसे नापें, तोलें कैसे –
देखें किस विध सांई –
नहीं पाये श्याम कन्हाई ।।

विमल नयन भये सदन हरि के –
चली नहीं प्रभुताई –
श्यामा के संग श्याम पधारे –
विमल बने यदुराई ।।

५३. जब प्रियतम के

जब प्रियतम के पदचाप सुने ।।
सोये गिरिवर जाग उठे –

नजरों से जब नजर मिले –
ऋषिवर से वन भी डोल उठे ।।

लहरोंमें ले मधुमय कम्पन –
सरितायें सारी झूम उठे ।।

विहंगमों के वृन्दगान से –
रोम रोम झंकार करे ।।

विमल दृष्टि से विमल विश्व में –
लास्य विमल का रास चले।।

५४. मरना तो है ही

मरना तो है ही एक दिन –
किया कराया सब छूट जायेगा ।
अपना पराया धरा रह जायेगा ।
खुली आंखे देख न पायेंगी ।
ये ही कान कुछ सुन न पायेंगे ।
न हाथ हिलेंगे; न पाँव डुलेंगे ।
बस्स – अर्थी उठाई जायेगी ।
अग्नि के समर्पित काया की जायेगी ।

क्यों न आज ही हम मरें ?
क्यों न आज ही चित्त से सब छूटे ?
क्यों न अभी अपना पराया मिटे ?
चिता की धरोहर यह काया –
अग्नि की धरोहर यह काया –

क्यों कर इसकी फिर माया ?
ममता का फँदा कटे ।
अहं का भ्रम मिटे ।
व्यक्ति का अन्त इसी क्षण हो ।
देह का जब होना हो तब हो ।
हम मर गये । अमर हो गये ।
मलरहित विमल विश्व की जय हो ।

५५. गागर में सागर

गागर में सागर मैं भर लूँ –
समझ सकूं यदि –
हरि ॐ तत्सत् ।।

बिन्दू में सिन्धूको समा लूँ -
समझ सकूं जो –
हरि ॐ तत्सत् ।।

जीवन संजीवन बनवा दूँ –
समझ सकूं जो –
हरि ॐ तत्सत् ।।

मृत्युको अमृतमें बदल दूँ –
समझ सकूं यदि –
हरि ॐ तत्सत् ।।

५६. फिर फिर बादल

फिर फिर बादल घिर घिर आये –

श्याम घनों से गगन सजाये –

सागर से भर भर जल लाये –

प्यासी धरती बाँह पसारे –

प्यासे तरुवर नजर उठायें –

उड़ुगण मन्जुल स्वर से पुकारे –

आओ बरसो मीत पियारे –

देर करो नहि जियरा तरसे –

५७. साधो नीकी सम समता

साधो नीकी सम समता ।
तजि अब विषमय विषमता ।।धृ।।

विश्व छन्द, प्रभु छन्द रचयिता ।
जीवन निज लय स्वर प्रदायिता ।।१।।

देह प्राण मन वीणा प्रभु की ।
अथवा वन्शी व्रजनन्दन की ।
चिन्मय रहने दो उद्गाता ।।२।।

श्वासोच्छवासे विश्वविधाता ।
है अनुमन्ता, भर्ता, भोक्ता ।
हम केवल दृष्टा अरु श्रोता ।।३।।

समता सम अरु सख्य ताल है ।
जीवन नर्तन नाट्य गान है ।
हम निमित्त नट नागर कर्ता ।।४।।

साधो नीकी सम समता ...

५८. मैं का मयखाना

मैं का मयखाना लुट गया ।
मैं–पन का मकान ढह गया ।
ममता का छप्पर उड गया ।
ज्ञान का फर्श उखड गया ।
सिद्धान्तों की दीवारें टूट गईं ।
आदर्शों का आदर्श टूट गया ।
मैं समूचा लुट गया ।
मकां के सरोसामान में थी उसकी हयाती ।
उसके लुट जाने में हुई मौत उसकी ।
अमरता के दावे अब कौन करे ?
होने पन का आडंबर अब कौन रचे ?
मयखाना लुट गया ।
मैं खुद ही खो गया ।
बाकी रहने को कुछ था नहीं ।
सो अब जो है –
वह कुछ भी नहीं ।

५९. रोपे गये थे

रोपे गये थे पंकमें ।
फिर भी रहे निष्कम्प हम ।।

ताप में संसार के फेंके गये ।
फिर भी रहे सन्तृप्त हम ।।

नश्वर जगत् के मंच पर ।
बनकर खिलाडी खेलते ।

छद्मस्थ है जो सत्य, उससे
समरस बने, रसमय रहे ।

६०. सखि री मोरे

सखि री मोरे अन्तरतम को पीर ।
बहे बन इन नयननमें नीर ।।

धर मानुष तन, जगमहिं बिचरत ।
बरतत पशुसम, विनय न शील ।।

झूठे बचन, हिय द्वेष कपट छल ।
कामी लंपट भये नारी नर ।।

६१. नयन खुले थे

नयन खुले थे –
लेकिन –
दृष्टि अवरुद्ध थी –
आन्तरिक अंधापन होगा ।१।

बुद्धि में चेतना थी –
लेकिन –
प्रज्ञा सुषुप्त थी –
चैतसिक तमस् रहा होगा ।२।

संस्कारों में स्पन्दन था –
लेकिन –
प्राणों में जडता थी –
प्रारब्ध-पाश प्रबल होगा ।३।

दैहिक सान्निध्य था –
लेकिन –
मानसिक गर्त गहन थी -
आनुवंशिक अन्तराय होगा ।४।

सन्तकृपा बरस रही थी –
लेकिन –
अवरोधों के आवरण अगणित थे –
क्या दुर्भाग्य इसीको कहते है ?

६२. विश्वम्भर का विश्वरूप

विश्वम्भर का विश्वरूप यह
विश्वनाथ सनाथ विश्व यह
दरस परस से विश्वेश्वर के
तन पुलकित है
मन है भीगा–रोम रोमांचित मेरा

श्यामल कोमल सजल गगन यह
पीताम्बर मंडित रश्मीमय
हरित सुहागन सी धरती यह
सस्मित ऋषिवर वृक्षराजी यह
दरस परस से इन ईश्वर के
तन पुलकित है
मन हे भीगा - रोम रोमांचित मेरा

६३. मैं मूर्त हूँ, अमूर्त भी

मैं मूर्त हूँ, अमूर्त भी
प्रज्ञाचक्षु के लिये मूर्त –
चर्मचक्षु के लिए अमूर्त ।

०

मैं एक हूँ, अनेक भी
वेदज्ञ के लिए एक –
सांख्यों के लिए अनेक ।

०

मैं सगुण हूँ, निर्गुण भी
देहदृष्टि से सगुण कहाउं –
तत्त्व बोध से कहाउं निर्गुण ।

०

मैं मौन हूँ, मुखर भी
ज्ञानी के लिए मौन –
अज्ञानी के लिए मुखर ।

०

मैं कालवश हूँ, कालातीत भी
देह काल के आधीन –
तत्त्व काल के अतीत ।

०

आस्ति-नास्ति दोनों मैं ही हूँ
जन्म - मृत्यु दोनों में मेरी मुद्रा है

६४. माई री म्हें तो

माई री म्हें तो सांवरियो वर वर्यो ।।
सपने में दीठो मोरमुगुट धर ।
गुंजन को गले माल ।। माई री...

पीळो पीताम्बर कामरी कारी ।
अधर मण्डल पै सोहे बांसुरी ।। माई री...

सरखा स्वजन अब एक सांवरो ।
तीन जगत में सो हि आसरो ।। माई री...

विमल नयन में बसत सांवरो ।
विमल वचन में फिरत बावरो ।। माई री...

६५. विश्वम्भर के

विश्वम्भर के विश्व विभव में –
विगलित विमल विलीन भई ।

विश्वचेतना विमलरूप बन –
विहरत प्राण विहंग सम ।

विमल कहो या विश्व कहो –
व्यक्ति कहो या कहो समष्टि ।

यहां एकरूप रस एक यहां –
यहां एकतत्त्व परमेश यहां ।

६६. मंडरा रही है

मंडरा रही है मौत अब –
इस देश की सियासत पर ।
ओढ आंचल धरम का जो –
चल रहा, पाखण्ड पर ।
बेवफा जो भी रहा –
इस देश, धर्म, जनतंत्र से –
होगा हिसाब चुकता सभी –
अब नियति के ही हाथ से ।

०

गीध की सी पैनी नजर –
औ ख़ौफ यमसा बेरहम ।
मैं देखती हुं उतरता –
हर बेवफा के कांध पर ।
खुदको बचा नहीं पायेंगे –
देकर बहाने तंत्र के ।
शरण भी कानून की –
पनाह संविधान की –
ढक न पायेंगी - सुनो ।
बेवफाई खुदगर्ज की ।

०

उठ रहा है तूफान यकसा –
दिल में अभागी अवाम के ।
आंधी रही है उमड़ अब –
हर जिस्म में और दिमाग में ।

६७. देश की समूचे इम्तिहाँ की

देश की समूचे - इम्तिहां की –
घडी आ गई ।
सारे जहाँ से अच्छे को
बचाना या खोने की ।
घडी आ गई –

न मिटनेवाली हस्ती –
मिटायी जा रही है ।
न झुकनेवाला सिर –
झुकाया जा रहा है ।
''हिन्दोस्तां हमारा'' –
बरबाद हो रहा है ।
न उठे अब भी –
तो डूबे सदा रहेंगे ।
घडी आ गई - मित्रों

देश के इम्तिहां की ।
जवानी कसौटी पर है –
चुनौतिओं से घिरी
प्रगल्भता प्रौढों की बाजी पर है ।
न ऊठे अब भी –
न जुटे अब भी –
तो ले डूबेंगे जनजन को –
सदा के लिए ।
घडी आ गई - इम्तिहां की ।
देश की समूचे इम्तिहाँ - घडी आ गई ।

बुलबुलों को बचाना होगा –
गुलिस्तान अपना ।
हिमाली की सन्तानों को
बचाना होगा भारत अपना
न रुकना, न झुकना –
बस उठना ही होगा –
बस जुटना ही होगा ।
आन्धी तूफानों से जूझेंगे मिलकर ।
कश्ती निकालेंगे खतरों से बाहर ।
लड़ने झगड ने की बेला नहीं है
बचाना है अपने को –
जनजन को अपने - भारत की तहजीब को
इन्सान की शान को
अब बचाना ही होगा ।

६८. अब न मैं हूँ

अब न मैं हूँ
मैं न हूँ अब
जो कुछ भी है
विश्वेश है ।

अब न है कोई क्रिया
कर्म भी कोई नहीं
जो हो रहा सा दीखता
विश्वेश का संकेत है ।

संकेत को समझे नहीं
रसहीन उनको ज़िदगी
संकेत स्पर्श है परम का
चैतन्यधन विमलानंद का ।

६९. जीवन विमल

जीवन विमल –
कमल प्रफुल्लित ।
अमल कमल के –
पराग कोमल ।
परिसर सुरभित –
परिमल से ।
रस के प्यासे –
हरि-जन आवत
निसदिन दिशदिश से ।
कमल भ्रमर की –
प्रीत पुरानी ।
एक लुटाये –
लूटे दूजा ।
रीत सनातन –
युग युग से ।

७०. अविरत अमृत

अविरत –
अमृत –
प्रवाहित घटमें ।।

समाधि –
हिमगिरि से –
नित बहती –
यह अमीधारा ।।

प्रक्षालित हैं –
तन मन प्राण –
अभिसिंचत यह –
धरा विमल ।।

भीगी दृष्टि –
वाणी भीगी –
झरता सख्यामृत –
पल पल ।।

७१. दिन दहाडे जाओ

दिन दहाडे जाओ - कान्हा
बन्सी बजाते जाओ ।
हर गोपी के घर में जाकर –
दिल की मटकी फोडो –
संसार की रस्सी तोडो - कान्हा
प्यार का माखन खाओ । दिन दहाडे.

०

प्यार का माखन खाकर –
कान्हा, खुलकर धूम मचाओ ।
माखन खाकर, पांव पसारो –
दिलमें उनके जमके बिराजो ।
कहे उठने को, फिर भी न उठना –
रोकर करने दो मनुहार । दिन दहाडे.

०

चोरी चोरी तुम्हे बुलाती –
उपर से करती इनकार ।
नखरेवाली इन गोपियनों को –
सबक सिखाओ तुम इस बार ।
जमना तट नहीं, वंशी वट नहीं –
रास रचाना नहीं, इस बार । दिन दहाडे.

०

या तो तुम्हें बुलाना छोडे –
या छोडे अपना घरबार ।
ब्रज रजमें धुलकर के निरंतर –
ब्रज में ही कर दो आबाद ।
युग युग की ये उलाहनायें –
झिडकियों की वह बौछार –
खतम ही कर दो तुम इस बार ।

७२. हम जा बसे है

हम जा बसे हैं अगम में
जहां दिन नहीं, ना रात है
सूरज नहीं, ना चांद है
निजतेज के उस लोक में
हम जा बसे हैं....।।१।।

पृथ्वी समायी आप - में
जलधी समाया अगन में
अग्नि समाया पवन में
और पवन सोया गगन में
हम जा बसे हैं....।।२।।

ब्रह्मांड सिमटा प्रणव में
प्रणव सिमटा बिन्दु में
उस बिन्दु के निजगर्भ में
हम जा बसे हैं....।।३।।

अर्धमात्रा प्रणव की
पावन गुफा है विमल की
उस गुफा के शून्य में
हम जा बसे हैं....।।४।।

निष्कल अगम निस्पन्द है
शून्यत्व ही पूर्णत्व है
शून्य के उस पूर्ण में
हम जा बसे हैं....।।५।।

७३. गाया था गीता में

गाया था गीता में – मैंने ।
"संभवामि युगे युगे" ।
अब आ रहा हूँ –
मैं आ रहा हूँ ।।१।।

आस बनकर सज्जनों की ।
आह बनकर शोषितों की ।
छा गया हूँ - गगन में –
मैं आ रहा हूँ ।।२।।

कह दो प्रेमीजनों को ।
जतला दो हरिभक्तों को ।
मैं आ रहा हूँ –
अब आ रहा हूँ ।।३।।

होगा नहीं अंधेर क्षण भी ।
होगी नहीं अब देर पल की ।
छा गया हूँ गगन में –
मैं आ रहा हूँ ।।४।।

लेकर उजाला –
आ रहा हूँ ।
मैं आ रहा हूँ ।।५।।

७४. मैं तो गई थी वृन्दावन

मैं तो गई थी वृन्दावन –
देखन मधुबन – पर
खो गई कुं ज निकुंज में ।।

श्यामल दोउ बालक –
आये अचानक –
लगे करन ठिठौले जी भरके ।। खो गई कुंज निकुंज में ।।

खेले आंख मिचौली –
बोले बोल तुतौली –
जिमि जानत हों - जुगजुग से ।। खो गई कुंज निकुंज में ।।

बडी बडी अखियां –
सखि रस की गगरियां –
धुल गई विमल रसनिधि में ।। खो गई कुंज निकुंज में ।।

७५. मेरे प्रभु एक बार

मेरे प्रभु एक बार फिर आओ ।
भारत देश बचाओ ।।

कौरव - पाण्डव फिरसे खडे हैं –
धर्मक्षेत्रमें कुरुक्षेत्रमें ।।

एक दूजेके खून के प्यासे –
सत्ता – सम्पत्ति के मद में ।।

हाय – परन्तु कृष्ण नहीं है –
भीष्म द्रोण या पार्थ नहीं हैं ।।

कर्ण विकर्ण शकुनि के दल हैं –
दुर्योधन, दु:शासन अगणित ।।

एक बार फिर प्रभु पधारो –
शंख बजाओ – चक्र चलावो ।।

अपना वचन निभाओ –
मेरे प्रभु एक बार फिर आओ ।।

७६. धर्म सनातन है

धर्म सनातन है मानव का –
पशुता से उपर उठना ।।

कर्म सनातन है मानव का –
प्रभुता परिलक्षित करना ।।

धर्म सनातन है मानव का –
समष्टि में समरस रहना ।।

कर्म सनातन है मानव का –
निज सर्जकता को जीना ।।

७७. गंगा गंगोत्री लौट चली

गंगा गंगोत्री लौट चली,
करके पावन सागर दर्शन,
मुसकाती पावनी लौट चली....गंगा ।

कहीं भागीरथी कहीं मंदाकिनी,
हिमगिरि नंदिनी लौट चली....गंगा ।

७८. रहना नहीं

रहना नहीं; देश बेगाना है ।
देह ही बेगाना परदेश है ।
आत्मा एक स्वदेश – निजधाम ।
आत्मस्थ रहकर देहभान रखना,
देह के साथ न्याय करना,
तलवार की धार पर चलने जैसा है ।
ढलती उम्मर; व्याधिजर्जर देह ।
जीवनयोगी का संन्यासधर्म;
प्रभु, पलपल मुश्किल पड रहा है ।
यह कसौटी कबतक ? क्यों ?

७९. बूंद बूंद को तरस रही थी

बूंद बूंद को –
तरस रही थी –
धरती रेगिस्तान की ।

मुसकाती है देखो कैसी –
पाकर वर्षा प्यार की ।

अविरत बरस रहे हैं –
बादल दिन दूने –
चौगुने रात को –
डोल रही है वनराई –
पात पात औ डाल डालमें ।

मानो देती साथ सखी का –
अमन चैन के हर पल में ।

धरती गगन की पावन प्रीति –
वर्षा रानी प्रगट करे ।

हृदय कमल विमल संतन का –
अमल आनंदे विश्व भरे ।

८०. ब्रह्माण्ड ब्रह्म का

ब्रह्माण्ड ब्रह्म का विग्रह है ।
यह सान्त रूप है अनंत का ।
निर्गुण स्वयं ही सगुण बना ।
निराकार ने आकार धरा ।
अणुअणु में विलसे चिति-शक्ति ।
नरनारी बने हैं शिव-शक्ति ।
दु:ख के कांटों में सुख पनपे ।
हंसते रोते मानव विहरे ।
नियति के झूले जीवन झूले ।
देखकर तमाशा विमला विहंसे ।

८२. मिलन हुआ सुप्रभात में

मिलन हुआ सुप्रभात में –
आज गौतम बुद्ध से ।

बातें हुई निर्वाण की –
निर्वाण पथ के पथिक की ।

बचपन रहा श्रमशील –
और श्रमभीना यौवन सदा ।

बीमारी न आती जान लेवा –
वृद्धत्व रहता परिश्रमी ।

अब वर्तमान में जीना है –
हो काया व्याधिजर्जर तो भी ।

स्वावलम्बन मंत्र हो –
हर बूंद लोही देहगत –
अस्थि - मज्जा देहगत –
फिर से लगाने काम में –
जीना है अनहद शान से ।

निर्वाण पथ के पथिक को –
विश्राम कैसे राह में ?
मृत्यु-मंजिल पहुंचकर –
आराम - पूर्णविराम होगा ।

८२. करनी कथनी एक समान

करनी कथनी एक समान –
ताको कहिये संत ।।

करनी कथनी मेल नहीं –
वह दुर्जन दुश्चित्त ।।

सोचे नहीं, समझे नहीं –
जो वर्ते स्वच्छंद ।।

तेह भूमि को भार रूप –
शाप कहो नर-रूप ।।

८३. अमरित की बरखा

अहं तजो –
आतम भजो –
आतम जीवन का सत्त्व है ।।

ममता तजो –
समता भजो –
समता जीवन का धर्म है ।।

गुमान तजो –
निर्मान बनो –
वह मौन का महाद्वार है ।।

नेह अंजन नयन में –
मैत्री दीपक हृदय में –
चिर मुक्ति का यह हार्द है ।।

जीवन अमरित की बरखा –
समझ बूझ इसको जीना –
होगा पल में बेडा पार ।

८४. जीवनयोग

जीवनयोग के साधक के लिये सम्पूर्ण जीवन तीर्थक्षेत्र है ।

स्वयंभू पर्वत, सरिता, सागर, वृक्ष-लता, पशु, पक्षी इत्यादि सब इस विराट् क्षेत्र के आराध्य-उपास्य प्रभु हैं ।

सर्वकाल पुण्यकाल है ।

यदि यह तथ्य स्वीकार्य न हो तो जीवनयोग की साधना

संभव नहीं होगी ।

जीवन की हर अभिव्यक्ति के साथ भावसंबंध तब जागृत होता है

जब अणु-रेणु में परमात्मा है,

इस तथ्य को चित्त बिनाशर्त अपना लेता है ।

तब उठते-बैठते, जागते-सोते, हंसते-रोते,

जीने का कर्म एक पवित्र यज्ञ बनता है ।

जागृति, अवधान, सहृदयता यज्ञकर्म के माध्यम बनते हैं ।

८५. त्रिवेणी

ज्ञान

युंजते मन उत युंजते धियः
विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।

विप्र – सूर्य, आदित्य, ब्राह्मण
ब्रह्मे चरति इति ब्राह्मणः ।

ब्रह्म में जिसकी बुद्धि तथा मन का संयोग है ।
मन को बुद्धि के साथ जोडकर जीता है ।
बुद्धि-अग्नितत्त्व – विप्र के यानी, सूर्य
के साथ संयुक्त रहती है ।
सूर्य परमात्मा की आँख है ।
उसी आँख से प्रभु सब को देखते हैं ।
वहां अज्ञान – अंधकार नहीं है ।
इसलिये मन को बुद्धि के साथ बुद्धि को विप्र के
साथ जोडकर ब्राह्मण बनो ।

कर्म

मन को हठयोग, मंत्रयोग या तंत्रयोग से वश
करने का पुरुषार्थ करो – क्षत्रिय बनो ।

भक्ति

मन प्रभु को समर्पित करके जीना सीखो -
वैश्य बनो । थोडा देकर बहुत पाओ ।

८६. गहरा सन्नाटा

गहरा सन्नाटा छाया है –
अन्तरतम में ।।

एक अजीब खामोशी –
घिर आयी है ।।

हिमालय सी स्थिरता –
है प्रसरी बाह्यान्तर में ।।

न जाने फिर भी –
चिर सावधानता बनी –
है, प्रहरी प्रति पल की ।।

सहज सन्तुलन साथ –
देता है, प्रति कर्म को ।।

आनन्द सागर के वक्ष में –
शान्ति थिरक रही है ।।

महा-अभिनिष्क्रमण का –
मूक मंगल संकेत –
गूंज रहा है आसमंत में ।।

८७. विश्व है चिद्विलास

विश्व है चिद्विलास ।
ब्रह्म है शाश्वत सत्य ।
ब्रह्मांड सिर्फ द्रष्टिदोष ।
चैतन्य एकमेव महाभूत ।
पंचमहाभूत मन की कल्पना ।

०

जड-चेतन का भेद –
मात्र मन की भ्रमणा ।
भेद की भ्रमणा पर –
खडा है संसार ।
बंध -मोक्ष कवि कल्पना –
साधना है एक प्रतारणा ।

८८. सहजता समाधि दशा

सहजता-समाधि दशा ।
सरलता निपजती उससे ।
एकांत-मौन परिणमे ।
सघन व्यवहार भले प्रारब्धे
विमल जीवन चैतन्य विहार ।
देखे कोई देखनहार ।

८९. तन में भारत देश

तन में भारत देश समाया ।
मन में पूरा विश्व समाज ।
प्राणों में प्यारी कुदरत है ।
आत्मस्थ चेतना है साथी ।
नाम देह का विमल भले हो -
हस्ती निखिल है ब्रह्ममयी ।

९०. यह क्यों कर करुणा

यह क्यों कर करुणा बहती है ?
आश्लेष विश्व को भरती है ।
आहार-विहार विवेक मात्र है ।
लयमय पालन होता है ।
प्रभुमय चित्त समर्पित प्रभु को ।
विमल भक्ति रस सरिता है ।

९१. प्रमाद प्रतिरोधार्थे

प्रमाद प्रतिरोधार्थे
लयबद्ध दिनचर्या ।
व्याधि प्रतिरोधार्थे
वैज्ञानिक ऋतुचर्या ।
प्रसाद प्रोत्साहनार्थे
आत्मरत जीवनचर्या ।

९२. प्राणों के मन्दिर में

प्राणों के मंदिर में रहते
आत्माराम विदेही ।।

तन मन की –
हलचल से अछूते
दृष्टा मात्र विरागी ।।

चिर निर्मल चिर उज्वल
सहज संतुलित योगी ।।

मर्त्यलोक में अमृतभोगी
प्रसरावे मधुमयी शान्ति ।।

९३. प्रमाद रहित विश्राम

(१)

प्रमाद रहित विश्राम स्फूर्ति जगाता है ।
अधीरता रहित व्यवहार शान्ति का वरदान बनता है ।

(२)

आत्मानुसंधान दिनचर्या को पवित्र बनाता है ।
आत्मानुसंधान एकान्त को लावण्य देता है ।

९४. विमल गुंजन

न भोग में, न त्याग में -
संयम में मुक्ति है ।।

जन में नहि, वन में नहि –
मन में मुक्ति द्वार है ।।

ग्रन्थ में न पन्थ में –
निर्ग्रन्थ आत्मबोध है ।।

आत्मबोध परमगुरु –
विमल जीवन सार है ।।

९५. शब्द कहां खो गये

शब्द कहां खो गये
नाद कहां सो गये
मधुर मौन करत कुजन
स्पंदित यह धरा गगन
पुलकित चिति, रोमांचित
संवित् भी, सहज प्राण
आलोकित हैं तनु सह मन
मृदु मृण्मय साज सखी
छेडत विभु दिव्य गान

९६. मारी खुशी संयम में है

भारी खुशी संयम में है –
भोग में त्याग में नहि ।।

संयम स्थिर होकर के –
जब स्व-भाव बनता है ।
रोम रोममें सहजानन्द-रस –
शीतलता देता है ।।

सहजानन्दी निखिल चेतना –
समाधिस्थ रहती है ।।

सहज समाधि मानवी जीवन –
सार्थक धन्य बनाती है ।।

९७. दुनिया में रहेगी

दुनिया में रहेगी अब एक ही कौम –
इन्सानोंकी ।।

दुनिया में रहेगी अब एक ही तहज़ीब –
इन्सानियत की ।।

दुनिया में रहेगा अब एक ही मजहब –
प्यारका ।।

दुनिया में रहेगी अब एक ही अर्थनीति –
बांट कर खाने की ।।

दुनिया में रहेगी अब एक ही राजनीति –
दोस्ती और भाईचारे की ।।

९८. ज़िन्दगी की दोर

ज़िन्दगी की दोर सोंप दो –
श्रीहरि के हाथ ।।

देखो कैसे सम्हालता है –
तीन लोक का नाथ ।।

भक्तों का अनुरागी है –
वह विश्वेश्वर ही स्वयं ।।

सह नहीं सकता प्रेमपियासा –
पलभर भक्त - वियोग ।।

विपदा में रखकर प्रतिपल में –
करवाता है निजकीर्तन ।।

कभी रूठता, कभी मनाता –
नखरे करता, प्रेमी के संग ।।

प्रभू के प्रेमी रहते मतवाले –
दरस परस में श्रीहरि के ।।

सुख दुःखों के महारास में –
रहते हैं अलमस्त ।।

९९. जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र

जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र,
जय जिनेन्द्र गाये जा ।।

वितराग महावीर रूप
दिल में ध्याये जा ।।

कषाय मुक्त, मुक्ति मार्ग
पर कदम बढाये जा ।।

राजचन्द्र बोध दीप,
अप्रमत्त जीये जा ।।

देह में विदेही बन
स्वरूपलीन रहते जा ।।

रे अमोल वचन विमल
सोच समझ जीते जा ।।

१००. सच्चिदानन्द घन

जाग रे.. जाग तु
नंद के नंदना
सच्चिदानंदघन मानुषी तनुधरा

जसुमती निधाना
नंद के नंदना... जाग रे.
गई निशा प्राची दिशा

सोहत अरुणांजना,
दोहत है धेनु सब ...
गोप-गोपांगना ...जाग रे.
(धेनु दोहन लगे सब गोप गोपांगना)

कालिंदी कलित ललित
रज व्रज की पुनीता
राह जुअत रस संगीनी,
रास-प्रिया रसप्लुता... जाग रे.

(रस प्लाविनी रस प्लुता... जाग रे.)
जोवत सब वाट कब,
उठत यदुनंदना
विकल प्राण विमल विनय
खोल कमल लोचना... जाग रे.

१०१. पति मार डाले पत्नी को

पति मार डाले पत्नी को ।
वहेम के कारण ?
नारी का यह दुर्भाग्य
कब तक ?
एक तरफ वह बनी
भारत के जनतंत्र की
सन्मान्य नागरिक
सब अधिकार प्राप्त है
उसे संविधान से !
किन्तु यदि वह जीने लगे
मानव के नाते –
समाज के स्वतंत्र घटक
की प्रतिष्ठा चाहने लगे
तो मार ठोक कर उसे
जतलाया जाता है कि
वह केवल नारी है !
भोग्या, रक्षणीया, कामिनी !
मार डालें ! तंदूर में जलायें
लाश उसकी - पति उसका !
वाह रे पतियों की जमात !

१०२. मैया मोहे काहे कहत

मैया मोहे काहे कहत सब कान्ह ।।ध्रु.।।

कानो न बौनो, मैं हूं तेरो
सुन्दर मदन गोपाल.... ।।१।।

श्याम वरण मेरो, कहत है कालो रे
नीकी न लागै बात.... ।।२।।

घर को बुलावे, दधि मधु देवे
फिर कहे माखन चोर... ।।३।।

हंसि के जशोदा कंठ लगावे
रिझत विमल गोपाल... ।।४।।

मैया मोहे काहे कहत सब कान्ह

१०३. बेचैनी

अेक अजीबोगरीब बेचैनी
देश में फैली है,
मानो देश की जडें किसीने
निर्ममता से हिला दी है !
आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक
अस्थिरता है; दिशाहीनता है,
पेड के सूखे पत्ते हवा में
यत्रतत्र उडते रहते हैं,
जनमानस वैसे चंचल है
अधीर है, उतावला है !
राजनीति-राष्ट्रनीति-प्रशासन;
ये शब्द अर्थहीन हो गये,
चुनाव, उम्मीदवारी, जनप्रतिनिधि
शब्द मजाक बन गये हैं !
अन्तर व्याकुल है.
आंसु वेदना की भट्ठी में
कबके सूख गये हैं;
अेक विस्फोट की आहट
इक बवंडर की गंध;
अराजकता का अंदेशा
झकझोर रहा है !

१०४. अमृत कलश

देह में रहते हुए
विश्वभर में व्याप्त होने की प्रतीति
कितनी अद्‌भुत है !
'मम' भाव से, सर्वथा अस्पृष्ट
'अहमस्मि' प्रत्यय कैसा विलक्षण है !
'अस्मत्' प्रत्यय तो है
'युष्मत्' प्रत्यय उठता ही नहीं !
सर्वतामयी चेतना ने देह का कब्जा लिया है ?
या अहं-चेतना 'सर्व' में व्याप्त हुई है ?
जो भी है - पावनमंगल घटना है !
जागृति, स्वप्न, सुषुप्तिका अनुबन्ध
वैश्विक जीवन से गूंथा गया है !
निरपेक्ष द्रष्टित्व सार्वभौम है,
न द्रष्टा, न द्रश्य
द्रष्टि की निष्कम्प ज्योति !
उसका प्रज्वलित रहना
जीवित होने का आशय !
अवधान उसका आलोक,
आल्हाद उसका सौरभ,
आनंद उसकी परिणति !
आलोक, आल्हाद; आनंद
व्यक्तित्व के मृत्यु ने घट को
अमृत कलश बना न दिया हो !

१०५. तबियत है माशुकाना

तबियत है आशिकाना
कुदरत है माशुकाना
तरसती है निगोडी
यह निगाहें हरदम
इक दीदार पाने को !
सुनहले केश फैलाकर
रोशनी मस्त मदमाती
दरख्तों में है इठलाती.
मुलायम सैज बर्फीली
बिछायें हिमगिरि मौला
देखते राह, कब आते
गौरीहर रुद्र रंगीला !

१०६. हिमगिरि दर्शन

हिमगिरि दर्शन
मन हो उन्मन
सहज सनातन
यह सम्मीलन !

०

नीली-नीली पहाडियाँ
ओढ हरियाली चुनरियाँ
मुस्काती इठलाती कैसी,
हिमकन्या की सहेलियाँ ?

०

नीचे फैली खाइयाँ
अंकों में ले ग्राम-नगरियाँ
निकली जैसे सब सखियाँ
रुनझुन रुनझुन पायलियाँ !

१०७. हरिशरण

जा रे जा रे जा –
जा... मनुआ !

जा रे शरण तू
श्रीहरि चरण

चरण-शरण से
हो मन विलयन

विमल विलोपन,
नव संजीवन !

१०८. स्वधर्म का सूर्योदय

जीवन-रस अब सूख गया है
नीरस जीवन से बहेतर है मरना
अब जी कर हम क्या करें ?
कैसे बचेगा लोकतंत्र अब ?
स्वधर्म पालन देश कब करेगा ?
स्वधर्म का सूर्योदय कब होगा ?

१०९. जन जन के आराध्य राम

जन जन के आराध्य राम तुम,
जन जन के चित्तचोर श्याम तुम.

रामसंगिनी सीता विरहिणी,
श्याम की श्यामा आत्मविलोपनी.

राम चरित नलिनीदल कोमल,
श्याम चरित पारिजात परिमल.

राम-श्याम दोउ सखा मनोरम,
विमल चित्त जिमि आलय अनुपम.

देहालय में देव समाये,
जप-तप-पूजन श्वसन समाये.

आतम-राम, आतम श्याम,
आतम-ब्रह्म, ब्रह्मांड समाये.

शब्दांकन की व्यर्थ तृषा यह,
शब्दांकन मृगजल की मृषा यह.

मुखर मौन, यद्यपि शब्दांकन
तारा मौन का वाचारम्भण !

११०. भारत भूमि का टूकड़ा ही नहीं

भारत भूमिका टूकड़ा ही नहीं
ऋषियों की यह यज्ञभूमि है
योगिजनों की तपोभूमि है
संतजनों का तीर्थधाम है

रक्ष भारतम् । रक्ष मानवम्
रक्ष सकल विश्वम् । रक्ष निखिल विश्वम्

भारत के संरक्षण में, विश्व सकल का रक्षण है
भारत के मंगल भविष्य में,
विश्व सकलका मंगल है...
भारत के उज्जवल भविष्य में
मानव का भावि उज्जवल है ।
रक्ष भारतम् । रक्ष मानवम्
रक्ष सकल विश्वम् । रक्ष निखिल विश्वम्

१११. प्रधान प्रहरी

हाड चाम की कुटी में
आत्मा भारत का प्रहरी है ।।
अटल बिहारी प्रधानमंत्री
विमल विहारी प्रधान प्रहरी ।।

११२. भ्रातृसंघ

चलो बनायें एक भ्रातृसंघ ।
जो भूमाता की व्यथा हरे ।
नव बिहार का निर्माण करें ।
जन जन को नवजीवन दे ।।

हम भूमिपुत्र भारतवासी ।
खेती गोधन के अभिलाषी ।
जल जंगल के हैं रखवाले ।
हम बंधुप्रेम के हैं मतवाले ।।

हम भ्रातृसंघ बनायेंगे ।
दु:ख दारिद्र हटायेंगे ।
अन्याय अधर्म मिटायेंगे ।
मानव की शान बढायेंगे ।।

११३. रक्ष भारतम् रक्ष भारतम्

अंधेरे में दिपक जलाया है जिसने ।
अटलजी को यश दो प्रभु इस घडी में ।।
लाखों दिलों की तमन्ना बनी है ।
अटलजी को यश दो...
बड़ा खतरे का दाव खेला है उसने ।
अपनी जिंदगी की बाजी लगा दी है दाव पे ।।
रक्ष भारतम् रक्ष मानवम् रक्ष सकल विश्वम् ।।
अटलजी की ईज्जत में भारत की ईज्जत है ।।
भारत की ईज्जत में दुनिया की ईज्जत है ।।
रक्ष भारतम् रक्ष मानवम् रक्ष सकल विश्वम् ।।
अब सहन न होगा प्रभु भारत का अशुभ
अब नहीं मानव का अशुभ
इस से तो अच्छा है इस दुनिया से उठ जाना
रक्ष भारतम् रक्ष मानवम् रक्ष सकल विश्वम् ।।

११४. कोई कल गये

कोई कल गये –
कोई आज चले –
हम को भी इक दिन जाना है ।
जो आया है –
सो जायेगा
राजा, रंक, फकीर ।
आने पर किसी के –
क्या हंसना ?
जाने पर किसी के
क्या रोना ?
परवर दिगार की याद में
हर सांस को लेते चलना ।
इस देह के नक़ाब में –
छिपे हैं आलीजां नबी ।
चढाकर रूह चरणों में –
विमल मस्ताने बन जाना ।

११५. समजत ना मन

समझत ना मन तू मेरा
बार बार समझावत हूं मैं
फिर भी तजे ना अंधेरा... समझत

जुठी माया, जुठी काया
जुठा जग ये पसारा
अंत समय कोउ काम न आये
छत्र ! प्रभु एक तेरा... समझत

११६. सब बल बन गये

सब बल बन गये निर्बल
तनबल, मनबल, धनबल
शासन का बल भी ।
लगे कारगर हिंसा सब को
पर पलभर का वह आभास
नष्ट करे मानवता को
मानवी शान-आन-बान को ।

११७. निर्मल जल कलकल बहता था

निर्मल जल
कलकल बहता था –
बियास चिनाब रावी के पट में १

खिलते थे
अनगिनत पुष्प
वृक्ष विशाल
दिव्य हिमगिरि के २

उडुगण उडते
नील गगन में
स्वर लहराते
दसों दिशा में ३

सूख गये पट
सरिताओं के
वृक्ष दीन सब
वन अब श्रीहीन
सजल नयन
रोते हैं निशदिन ४

सोयीं कलियां
सोये फूल भी
गंधवती के मौन गर्भ में ५

११८. प्रज्ञा वंशी

प्रज्ञा –
    वंशी –
विश्वंभरकी
    चिर स्पंदित
इस विमल देह में ।। १ ।।
स्वर
    लहराते
तन में
    मन में
अरु प्राणो में ।। २ ।।
आलोकित
    आसमन्त
बनता
    विमलदेह का
हो निवास जहाँ ।। ३ ।।
प्रज्ञा –
    दीपक –
चिन्मय –
मधुमय –
श्वास श्वास को
करे
    –प्रज्वलित
    –सुरभीत
विमल देह में ।। ४ ।।
ब्रह्म विमलमय
विमल ब्रह्ममय
लीला मंगल
    आदि काल से ।। ५ ।।

११९. शब्द शेष अस्तित्व

शब्दशेष –
अस्तित्व
बचा है
सरिता
सागर
निर्मल जल का

शुद्ध गगन
गुर्वी उर्वी का
मानव तन में
मानवता का

सुख गये
सब स्रोत
स्नेह के
करुणा की
पावन धारा के

श्वासों के झूले पर
झूले
सुख दु:ख के
कांटों के झेलें
यही शेष
प्रारब्ध
सुज्ञ का

१२०. हम कौन थे

हम कौन थे
और क्या भये ?
ईन्सान से हेवान
हम क्यों बन सके ?
भूले पड़े निज सत्त्व से–
आज़ादी पाते हम सभी !
धर्म के उस मर्म से
जो कर्म को ही यज्ञमय
पूजा समझते परम की
हम कौन थे – क्या भये ?
इन्सान से हैवान हम
कैसे - कहो जी - बन सके ?

१२१. व्रज में होरी खेले

व्रज में होरी खेले नंदलाल
होरी खेले मेरे नंदलाल
केसर चंदन अबील गुलाल, धुम मचावत है नंदलाल
गोकुल की गलियन में गोपी, ठाडी बन कब की भरी पिचकारी
आवत कब नंदलाल...होरी

जमुना तट पे वंशी वट में साथ लिये ग्वाल बाल
दाम - सुदाम दाउजी के संग में
खेलत अबील गुलाल...धूम मचावत है गोपाल...
व्रज में...

विमल वदन गोपाल लाल को
निरखी रीझत व्रज के सब ग्वाल...व्रज में..

१२२. ए मेरे मालिक

ए मेरे मालिक –
महेरबां खलक के ।

हालात तेरी खिलकत के –
काबिले-बर्दास्त नहीं ।

भाई को कत्ल करे भाई –
वहशत से ईन्सां की सगाई ।

काबिले – बर्दास्त नहीं ।
सूखते नहीं हैं आंसू –
खून-ए-जिगर के, रब ।

हैवान बने क्या ईन्सां –
काबिले बर्दास्त नहीं ।

कब तक रखोगे ज़िन्दा –
क्यौं कर रखोगे ज़िन्दा ।

बन्दे से हो न खिदमत –
खिलकत की दिलोजां से ।

१२३. गहरा सन्नाटा

गहरा सन्नाटा छाया है –
अन्तरतम में ।।
एक अजीब खामोशी –
घिर आयी है ।।
हिमालय-सी स्थिरता–
है प्रसरी बाह्यान्तर में ।।
न जाने फिर भी –
चिर सावधानता बनी –
है, प्रहरी प्रतिपल की ।।
सहज सन्तुलन साथ –
देता है, प्रति कर्म को ।।
आनन्द सागर के बक्ष में –
शान्ति थिरक रही है ।।
महा-अभिनिष्क्रमण का –
मूक मंगल संकेत–
गूंज रहा है आसमंत में ।।

१२४. इश्क में भला

इश्क में भला ग़म कैसे ?
तड़पने की बख़्शीश में शिकायत कैसे ?
लुट जाने के लुत्फ़ में आह कैसे ?

०

जीने से हो "इश्क तब –
जिन्दगी है बन्दगी"
खुदी की खुदकुशी में
जुदाई की क़ब्र है ।

०

गुज़र रही हैं रातें –
गुज़र रहे हैं दिन ।
चक्र-सी है दिले हालत –
दिन रात में या रब्र ।
न किसी से कोई शिकवा –
न गीला ग़ैर से ।

०

हम हैं या मिट गये हैं –
अब तू ही बता दे ।
इस होने का राज़ क्या है –
यह तू ही जता दे ।
न है मस्ती
न है सुस्ती
है तो बस चुस्ती ही चुस्ती ।

१२५. चुमने लगा बुढ़ापा

चुभने लगा बुढ़ापा –
जवानी में बदलने को, जी करे ।।१।।

वतन की पाक खाक़ में –
मिट जाने को, जी करे ।।२।।

सिन्धु औ ब्रह्मपुत्र में –
धुल जाने को, जी करे ।।३।।

कश्मीर कन्याकुमारी में –
मिल जाने को, जी करे ।।४।।

मुर्दादिलो में मेरी तपिश –
भर देने को, जी करे ।।५।।

मुश्कीलियां मुल्क की देखकर
शहादत ओढने को, जी करे ।।६।।

गगन में चढ विस्फोट करे –
मेरे वचन, यौं जी करे ।।७।।

पवन में चढ ब्रह्मांड भरे –
वचन विमल यौं जी करे ।।८।।

१२६. भारत नहीं टूटेगा

मेरा मन आकुल व्याकुल है –
किसके लिये और क्यों कर ?
भारत के लिये, जन जन के लिये ।
आत्मविस्मृति यह तन्द्रा !
गहरी जडता की कालिख - मुद्रा !

०

यह भी क्या रहस्य है
कि मन हार मानने को राजी नहीं !
आसेतु हिमाचल बौद्धिक अराजक
मानसिक अव्यवस्था
प्रशासनिक भ्रष्टाचार की पराकाष्ठा
राजनीतिक हिंसाचार माफियाचार चरम सीमा पर
फिर भी हारकर चुप नहीं होना चाहता
कोई तब मेरे भीतर

०

इस भीषण अंधेरे को चिरनेवाली
रोशनी क्यों मेरे भीतर से
फूटपडना चाहती है
इस वृद्ध जर्जर काया में से ?
दु:ख दर्द को पिघलाकर
क्यों एक अदम्य करुणाधारा
फूटपडना चाहती है
दशेंद्रियों के द्वार तोडकर ?

०

भारत नहीं टूटेगा
नहीं मिटेगा
नहीं हटेगा वैदिक भास्वर
गाँव न होंगे अब पराधीन
जन न रहेंगे विवश हीन दीन
किसके भरोसे कह रही हूँ ?
सिवा मेरे अन्तरात्मा के ?
सिवा विश्वव्यापी परमात्मा के ?
दूजा भरोसा मैं ने कब जाना था
जो आज जानूंगी ?

१२७. हरत मन

हरत मन–

सुन्दर श्याम हरि ।।

अविकल अविचल–

कालजयी हरि ।।

सुख दु:ख दोउ–

पल न भुलावे

सुन्दर श्याम हरि ।।

आवत जावत–

सोवत जागत–

सांस समाये हरि ।।

हरत मन–

सुन्दर श्याम हरि ।।

१२८. जीवन स्वयं दिव्यता

जीवन स्वयं दिव्यता
मनुष्य देह वैश्विक जीवन का अनुग्रह है ।
अनन्त ऊर्जाओं के इस खजाने का समुचित
विनियोग करना मानव धर्म है ।
प्रारब्ध प्राप्त परिस्थिति को माध्यम बना के
श्रद्धापूर्वक जीना इष्ट है ।
इन्द्रियों के स्तर पर संतुलन
वाणी के स्तर पर सत्यमय संयम
चित्त में राग-द्वेष रहित समत्व
साधने का पुरुषार्थ ही अध्यात्म है ।
चाहे आप मुक्तिपथ से चलें या
ज्ञानमार्ग पर चले या –
ध्यानपथ स्वीकारें ।

१२९. सुमन करे जब नमन

सुमन करे
जब नमन
बने वह अमन
अमन में उगती
उन्मनी है ।।

उन्मनी परिणत
मन के लय में
वह लय आत्मोदय में ।।

लास्य परम का
प्रगटे उस पल
परमानंद विमल है ।।

१३०. विहरत श्रीहरि

विहरत श्रीहरि
विमल अंतरे ।

विलसत शचीश्री
विमल लोचने ।

महेकत मधुवन
विमल जीवने ।

पावन विलयन
विमलानन्दे ।

१३१. चक्रसुदर्शन

चक्रसुदर्शन लोकतंत्र का
है जागृत जनशक्ति ।

दायित्वों का भान जगाता
जन-जन में निजशक्ति ।

दायित्वों का पालन देता
क्षमता निजशासन की ।

परिवारों में नगर-डगर में
पंचायत में लोकसभा में ।

निजशासनक्षम जनता लडती
अत्याचार भ्रष्टतासे ।

चक्र सुदर्शन सदैव तत्पर
जन-जन के हाथों में ।।

१३२. लोकतंत्र के भीष्म-द्रोण

लोकतंत्र के भीष्म-द्रोण सब;
गूंगे बनकर बैठे हैं,
देख रहे हैं खूली आंख से;
लोकतंत्र का वस्त्रहरण.
संसद न ही गौरवशाली;
जनप्रतिनिधिओं की परिषद,
विनय विवेकहीन उच्छृंखल
शब्दयुद्ध की रणभूमि अशेष.
ऋषियों की यह देवभूमि है;
योगभूमि योगिजन की,
भक्तितीर्थ है संतजनों का;
इसे बचाना है विश्वेश-
आओ सत्वर हे विश्वेश्वर;
भारत देश संभालो,
बंसी बजाओ शंख बजाओ;
या फिर चक्र चलाओ.

१३३. हम ऋषियों की सन्तान

हम ऋषियों की सन्तान है
हम भारत को बचायेंगे ।

हम ऋषियों की सन्तान है
हम ऋषि संस्कृति को बचायेंगे ।

सीमा पर लड़नेवालों की
आँखों में मेरे प्राण बसे ।

सीमा पर लड़नेवालों के
प्राणों में मेरे प्राण घूले ।

यह हाड़चाम डलहौजी में है
यह हाड़चाम शिवकुल में है
सीमा पर आत्मा प्रहरी है ।

देह हमारी यज्ञवेदी है
हर श्वास यज्ञ में आहुति है ।

१३४. हर नज़र के जलवे से

हर नज़र के जलवे से रोशन हो जब ।
छिपने का यह बहाना, है किस काम का ।।

हर जिगर की धड़कन में बोलते हो जब ।
खामोशी का बहाना, है किस काम का ।।

इस सूरज की रोशनी में तेरा नूर है ।
ओ' चन्दा की चान्दनी में तेरा हुश्न है ।।

जर्रे जर्रे की रूहानी मुसकान में ।
खुदा तेरी मुहब्बत का अंजाम है ।।

१३५. हम बेबाक़ हो गये

हम बेबाक़ हो गये ।
लेना देना किसी से कुछ नहीं ।
हम बेबाक़ हो गये ।।

काल का इन्तिकाल कर ।
हम अकाल हो गये ।
हम बेबाक़ हो गये ।।

मौत को दे दीदार अपना ।
हम बेमौत हो गये ।
हम बेबाक़ हो गये ।।

इश्क ही बना हमारा आशिक ।
माशुकों की महफिल से ।
अब हम उठ गये हैं ।
हम बेबाक़ हो गये हैं ।।

१३६. इश्क हो गया

'धरती पर जन्नत उतर आयी'
इश्क हो गया आशिकी-से
मिजाज़ माशुकाना हो गये !
हम ही आशिक
माशुक भी हम ही
यह कैसे गज़ब हो गया !
मय के बिना का मयखाना
बिना साकी के छलके पैमाना
शायद खुदी ही मय बन गयी ।
पीनेवाले भी हम
पैमाना भी हम
यह कैसा गज़ब हो गया ।
कहें तो कैसे और किससे
कि खुदा से खुदी की जुदाई मिट गई
धरती पे जन्नत उतर आयी
यह कैसे गज़ब हो गया ।

१३७. मौत के झूले पे बैठी

मौत के झूले पे बैठी
झूलती है ज़िन्दगी ।
क्या खुशी और ग़म भी कैसे
जब मौत का संग है ।

०

मयखाने खलक में बन्दो
साकी है हम
चमन भी हम
पीते पीलाते हैं हरदम

०

दिल के पैमाने में ढुलकर
गहराता रंग औ कैफ है
रंगी रसीली ज़िन्दगी
बीतती ज्यौं शामे ग़म

१३८. सुन लो मेरे मन के मीत

सुन लो मेरे मन के मीत ।
सीखो जीने की यह रीत ।
हार नहीं, जीत नहीं ।
ज़िन्दगी है यह बन्दगी ।।१।।

०

लौ लगाकर इस खुदा से ।
करो खिदमत नेक दिल से ।
खुदा-ए – खिदमत में प्यारे ।
शान है इन्सान की ।।२।।

दिल दुभाकर जो किसी का ।
धन लुटोगे ग़ैर का तुम ।
दुख हया से सिर झुकेगा ।
देख लो पलभर में तुम ।।३।।

०

अपना आपा चीन्हो बन्दे ।
छोड इस दुनिया के फन्दे ।
जुदाई है खुद जहन्नम ।
खुदाई जन्नत ए रब ।।४।।

०

ला इलाही इल्लिलाह ।
ला इलाही इल्लिलाह ।
ला इलाही इल्लिलाहा ।

१३९. इश्के इलाही

ईश्के इलाही के मतवाले हम ।
दुनिया हमन को क्या जाने ।
बनाया है चमन आला ।
शौकसे वह खुदा ताला ।
रखा बन्दे को हाकिमने ।
हुकम देकर जियारत का ।
सांस लेना इबादत है ।
दुआ करना जियारत है ।
शराबे मुहब्बत पिलाते हैं ।
जिलाते हैं निगाहों से ।
तकदीर देखो मुफस्सिल की ।
आशिक जिस पर इलाही-इल्लाह

१४०. क्या खुशनसीब हैं

क्या खुशनसीब हैं हम –
गैबी निवास पहुंचे ।।

हम जानते नहीं हैं –
कैसे कहां से गुजरे ।।

बस जानते तो इतना –
सांई के दर पे पहुंचे ।।

खोले कि दर न खोले –
सांई की मौज जाने ।।

हम जानते हैं इतना –
प्यारे के दर पे पहुंचे ।।

नंदादीप

जीवनधारा ले चली
मुझे इस पल यहाँ
उस पल वहाँ
कोई जीवनधारा से पूछो
तू बहती क्यों है ?

१४१. जिन्हें ज़िन्दगी से

जिन्हें ज़िन्दगी से प्यार है –
वे मौत से डरते नहीं ।
जिन्हें मौत का स्वीकार है –
उन्हें ज़िन्दगी का भय नहीं ।
ज़िन्दगी है बन्दगी –
मौत ही जानो इबादत –
जीना है –
हक़ीकत में सिजदा –
बाकी भूल भुलैया है ।

हिरदे की कली

हिरदे की कली, अब मुरझायी ।
सुषमा सौरभ सब सिमटत है ।।१।।
मौजोंकी उमंगे अकुलायी ।
पानी को पसीना आवत है ।।२।।
अब शमा दर्द की मुसकायी ।
अब अग्नि, शिखासे झुलसत है ।।३।।
तूफान व्यथा के उमड आये ।
मुसकान के आंसू बिखरत हैं ।।४।।
दुई-जुदाई विष अधरोंमें ।
प्रीत प्याससे तरसत है ।।५।।
कैसा मुकाम यह जीवनमें ।
हर सांस मौतसे महेकत है ।।६।।

मौननो निनाद

(गुजराती काव्यो)

प्रथम आवृत्ति : रामनवमी, 2014

कुल काव्यो : 131

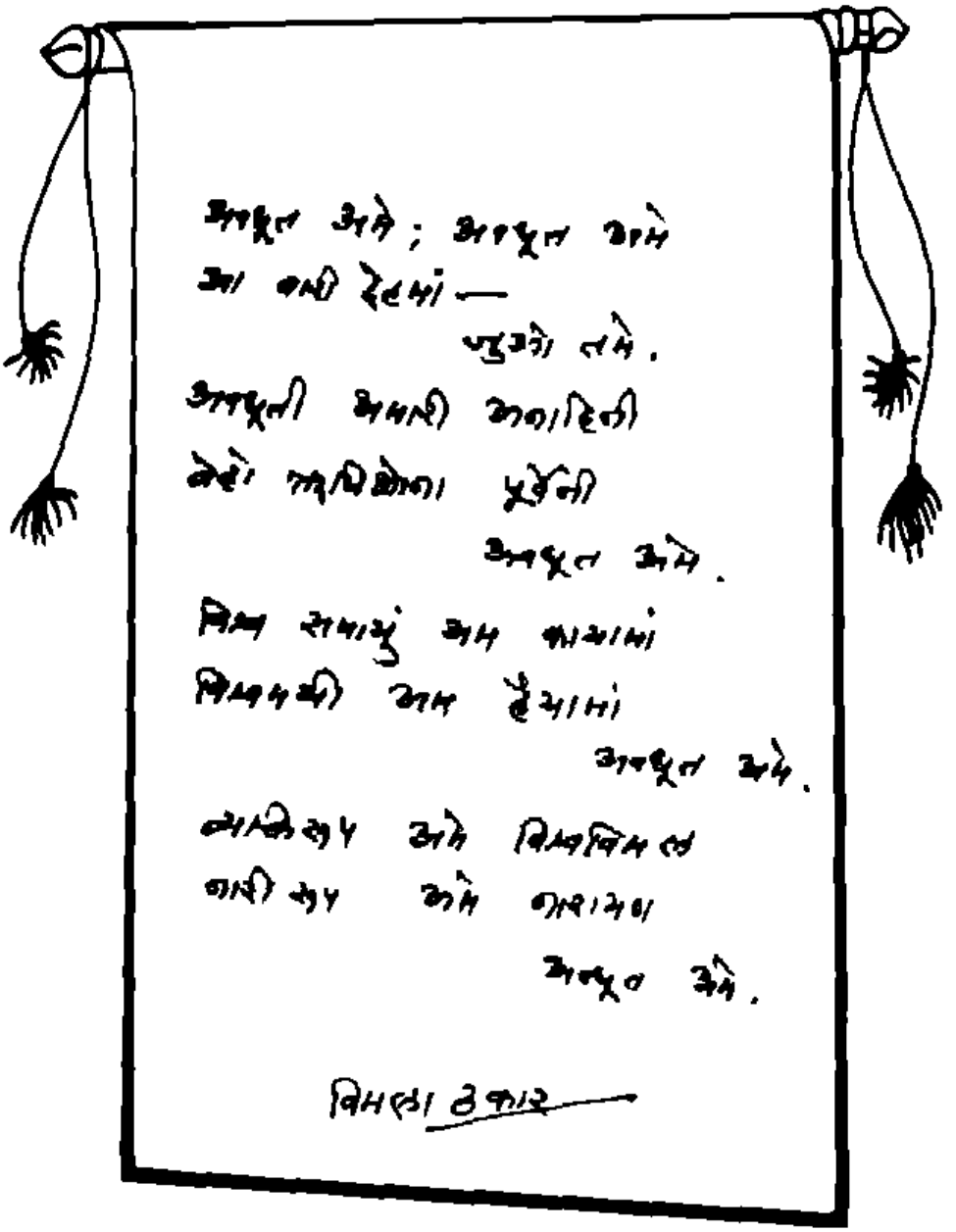

અદ્ભુત અમે ; અદ્ભુત અમે
આ બની દેહમાં —
જુઓ તમે.
અદ્ભુતી અમારી અનાહતી
જેને ત્રણિલોકના પૂજેની
અદ્ભુત અમે.
વિશ્વ સમાયું અમ કાયામાં
વિશ્વમયી અમ હૈયામાં
અદ્ભુત અમે.
વ્યક્તિરૂપ અને વિશ્વવિશ્વ
નારીરૂપ અને નારાયણ
અદ્ભુત અમે.

વિમલા ઠકાર

१४२. अमे वणझारा

वणझारा भई वणझारा
अमे वणझारा भई वणझारा

प्रभु आज्ञाअे ऊतर्यां रमवा
जनम मरणनां फेरा... वणझारा

राम भजंता रास रमंता
थईशुं रे भव पारा...वणझारा

(सर्वप्रथम गुजराती कविता)

१४३. अमोने तेडुं आव्युं

अमोने तेडुं आव्युं गिरनारनुं –
अने उपड्यां अमे तो मधराते हो जी ।
संगाते सिद्ध कलंदर शाह हता
कहे कहेण लाव्यो छुं सती मातनुं हो जी ।

०

काळी बिहामणी कपरी रात हती
काळां ने घेरायेलां हतां वादळां –
चौधारे वर्षा वरसती हती ने
पवने प्रसरेली वळी पांख हती ।

०

मलकाया गरवा दातार हो
अने मलकाया रूपना अंबार जी
मावडीअे लीधां ओवारणां रे हां
ने झळहळ्यां अंतरनां तार जी
धूणीनां अजवाळांमां जोया जोगंदर –
ने जोयां भरमांड ना मात जी

हरखी ऊठ्या प्राण ने मरकी ऊठ्युं मनडुं
पूछ्युं, प्रभु केम कर्यां याद जी
प्रेमनो उभर्यो आव्यों अने तेडुं अमे मोकल्युं
जोवानुं मन हतुं ने संतलस करवी हती
पंडनो व्हालिडो पधार्यो तेथी गरवो गहकायो
सांभळो हवे तमे दिलडांनी वात रे हां
भळाविये गिरनार बरंडा गुरुशिखरां, शिव घांटी
तने भळाविये सघळां अमे कापडी रे हां
संताडी रहेवानी घडी वीती रे व्हालडा
थाओ परगट वेळा वसमी रे आजनी

१४४. अलविदा

अलविदा कहो दोस्तो –
कहो अलविदा
साथे रह्यां; साथे जीव्यां,
संग माण्यो; रंग माण्यो,
तडको जोयो; छाया जोई,
सुखमां हस्यां; दु:खमां रड्यां,
स्मितो परस्पर भळ्यां
आंसू सरिता बन्यां,
हवे विदायनी घडी आवे छे
दैहिक मिलननो अन्त आवे छे
प्राणप्रयाणोत्सवनुं चोघडियुं बारणे
शहेनाई वगाडतुं ऊभुं छे
तमारा सहयोग माटे कृतज्ञ छुं
शिक्षक भावे ठपकार्या तेनो खेद छे
कठोर शिस्तमां राख्या तेनी लाचारी छे
अमारा देहान्तमां तमारो जीवनारंभ थवा दो
अमारां भस्मीकरणमां तमारी स्वाधीनता दीपवा दो
अमो हता व्यक्तिकरणनो संवाळो भ्रम
यथार्थमां अमे व्यक्ति हतां ज नहि
देह हतो पण देही हतो ज नहि
देहमां हतुं ब्रह्मांड, हती वैश्विक चेतना !

१४५. मृत्युपत्र

जे लोको सत्संग परिवारना छे –

तेमने कहेवा मागुं छुं के –

हवे तेओ सर्वथा आत्मनिर्भर थईने जीवे

घणुं सांभळ्युं; घणो स्नेह अनुभव्यो शिबिरोमां रह्या; ज्ञानेश्वरी प्रवचनो सांभळ्या व्यक्तिगत पत्रव्यवहार कर्यो; वैयक्तिक रीते अमोने मळ्या, मार्गदर्शन मेळव्युं हवे आ क्रमनो अन्त आववो जोईये, विमलबेन जीवित नथी एम समझीने जीवन जीववा मांडो.

तमारी व्यक्तिनिष्ठा, व्यक्तिपूजा अने अमारा उपरनी निर्भरता हवे अमाराथी सहन नथी थती. जीरवी शकाती नथी.

तमारा पात्रमां जेटलुं झिलायुं हशे, तेटलुं जीववा मांडो, वधारानी लालच नकामी.

गुरुपूर्णिमाने दिवसे अमे तमोने मळवा ईच्छता नथी. अमोने अलविदा करीने आत्मनिर्भर रीते जीववा मांडो

१४६. आकाश धुंधळुं छे

आकाश धुंधळुं छे.
तडको साव मोळो छे.
पवन पडी गयो छे.
वृक्षोनी शाखाओ उदास छे
कारण
पांदडां हसता नथी; डोलता नथी.
पंखीओ आम तेम उडे छे, पण गातां नथी.
धरती मूंगी ने गगन पण मूंगुं !
भारतीयोनुं अकल्पित अध:पतन जोईने मूंगा थया हशे ?
मानव पोतानी जातने वेचे छे एटले कदाच हशे ?
माणसने माणस खरीदे छे हजारोमां लाखोमां करोडोमां !
आ बेहूदो व्यापार तेमने खिन्न करतो हशे ?
ठंडे कलेजे थती हत्याओ लोही थिजवती हशे !
अपहरणोनो नवो चीलो भयभीत करतो हशे !
काश्मीर - पंजाबमां थनारो रोजनो नरसंहार !
असममां उछळनार प्रक्षोभ अने हिंसाचार !
गुजरातमां उभरेलां कोमी रमखाणो !
मारी आंखोना आंसू सुकाई गया, वाणी विलोपी
लोही नसोमां फरवानुं भूली गयुं, श्वास थंभी गया
कोई पण बीमारी वगर हुं बीमार छुं
मनुष्यनी चिन्ता नथी थती मने –
वर्तमाननी सळगती चिता सर्वांग दझाडे छे,
पलको सुधी आवीने निद्रा पाछी फरे छे;
मोढामां नांखेला कोळिया गळा सुधी पहोंचता
पहोंचता बेस्वाद थई जाय छे !

१४७. परोढ पांगर्युं

परोढ पांगर्युं
खुली आंखलडी
उगमणीअे - दोडी रे ।।१।।

गगन मलिन ने
धरती उदास
धुळियो सूरज - देख्यो रे ।।२।।

नजरूं फरे त्यां
ओळो काळो
गमगीनीनो - जोयो रे ।।३।।

शानी उदासी ?
गमगीनी शानी ?
सहियर, हुं ना जाणुं रे ।।४।।

वसमा दिवसो
वसमी रातो
वसमी आ जिन्दगानी रे ।।५।।

१४८. अरावलि अरावलि

अरावलि अरावलि
शुं श्रीहरिनी सुरावलि ?
आ गगन नीलवर्णी
शुं पोते छे श्रीहरि ?
आलोक सोनवर्णो
शुं वृषभदुलारी पोते
के कदम्ब व्रजनो ?
गुर्वी गौरववन्ती
शुं श्यामल जसुमति ?
सरवर प्रसन्न शुं
दर्पण हरिनो ?
पंखीनो कलरव के
छे नाद मधुर नूपुरनो ?
आ विश्व विमल देखुं
के महारास माधवनो ?

१४९. क्यां सुधी रमत रमशो

क्यां सुधी रमत रमशो
अयि जगन्मात हे ?

अमे चन्द्र नथी के सूरज
आ तो खंजन तव कपोलनां.

तारागण के नक्षत्र नथी
छे तेज-राश्मि तव लोचननां.

तव श्वास वह्यो जगदम्ब
ने सरिता सागर सप्त बन्यां,

हाथनुं हलन पळ विपळ रह्युं
ने निबिड गहन उपवनो बन्यां.

संचालन पदनुं विनोदभर्युं
सह्याद्रि हिमाद्रि विशाळ बन्यां.

रमत रमे जगदम्ब सहज
ने विश्व विमल उपज्या अनन्त.

१५०. अवधूत अमे

अवधूत अमे; अवधूत अमे,
आ नारी देहमां – जुओ तमे.

अवधूती अमारी अनादिनी
वेदो ऋषिओना पूर्वेनी....अवधूत अमे.

विश्व समायुं अम कायामां
विश्वमयी अम हैयामां....अवधूत अमे.

व्यक्तिरूप अमे विश्वविमल
नारी रूप अमे नारायण....अवधूत अमे.

१५१. मात्र श्वसन नथी करती

मात्र श्वसन नथी करती
हुं तो जीवुं छुं.
पळे-पळ ने क्षणे क्षण.
सम्बन्धोनुं जाळ नथी प्रसरती
ते तो मुक्तिनुं द्वार बनी गया छे
सम्बन्धोमां सन्तायेल मुक्ति जीवुं छुं

देहना गेहने विकारोनो कारागार नथी बनाव्यो
मुक्तिना पुष्पो वडे सुरभित कर्युं छे
सदेह मुक्ति ने समाधिस्थ जीवन जीवुं छुं.

मृत्यु आवीने कोळियो भरे, ते पहेलां
मरण प्राशीने अमृतमय बनी छुं.

सहज समाधिनुं आलय छुं मित्रो,
आत्मरतिनुं निलय छुं

विमल वाणी छे अगमनी सरवाणी
जेनी सोडम सन्तोअे प्रीछाणी.

१५२. सहजानन्दथी मघमघता

सहजानन्दथी मघमघता दिवसो !
निरामय सुषुप्तिनी महेकन्ती रातो !
सम्बन्धोना पायलोनो मृदु झंकार,
संभळावती मुक्तिनो मुक्त हुंकार !
निर्मल निरावरण नील गगन;
नादब्रह्मनुं जाणे रौप्य सदन !
नीरव एकान्तनुं अवभृथ स्नान –
करेलां गात्रो विश्रान्त प्रशान्त
रससिद्धि थयेलुं अमृतमय भोजन
पळे पळनुं सहज संवादी संयोजन
हे अर्बुदाचल ! हे विमलाचल !
कृतज्ञ छुं – शतवार प्रणत छुं.

Life is Light
Living is Light.
Light is the day and
Light is the night.
Perhaps Death is also Light
And dying Lighter that Living.

१५३. मन पोते

मन पोते बन्धन निर्माता
मन पोते मुक्ति रचयिता
मन सर्जे संसार अहर्निश
झंखे मन संन्यास अहर्निश
हुं – म्हारांनुं जाळ पाथरे
जकडाईने प्रति पल कणसे
मन विश्रामे ब्रह्मांड विलाये
मन मौने आतम अजवाळे
मन जाते मायारूप जाणो
मन विलयन निजपद सुख माणो

१५४. मौननुं लावण्य

मौननुं लावण्य अकथ छे
मौननुं माधुर्य अजब छे
मौन अतल अविचळ अविनाशी
मौन अकळ अनुपम सुखराशि
हुंपणुं-तूंपणुं सहज विलाये
अदम् - इदम्नी भ्रांति नसाये
मौन परम पावन पावक छे
मौन अशुद्धीनुं दाहक छे.

१५५. सत्संग विना

सतसंग विना नहीं रंग जीवनमां
सतसंग करावे स्नेहे जे जन –

ते मारा प्रिय सुहृद सरखा-जन
आतमगोठडी मांडे जे जन –

ते माहरा प्रिय सखा सुहृद जन
तत्त्वविचार करावे जे जन –
ते साचा साथी संगी जन.

१५६. हुं देह रूपे

हुं देहरूपे मनुज छुं –
चैतन्य आत्मानी रूअे ।
मन मानवी लईने फरुं –
पण चित्त वृत्ति शून्य छे ।
व्यवहार बुद्धि थकी करुं –
जे लीन प्रज्ञामां रहे ।
सम्बन्ध सहुनो स्वीकारुं –
संन्यस्त पण अन्तर रहे ।

०

मम शब्द पांखो मौननी –
जे प्रसरी मौन विहरे अरे ।
मम कर्म पांख समाधिनी –
जे प्रसरी स्वरूप विलसी रहे ।

०

माँ शारदाना सदनमां –
गरवो विहार छे मौननो ।
सहजात्म रूपी गगनमां –
नरवो विलास समाधिनो ।

०

आ विमल जीवननी कथा –
गाथा समाधि योगनी ।
थाओ समाधि-मरण पण –
छे आस मम अन्तरतणी ।

१५७. मारुं जाणवापणुं

मारुं जाणवापणुं क्यां खोवायुं ?
मारुं न जाणवापणुं क्यां संतायुं ?
रह्युं छे शेष एक होवापणुं !
आ ते शुं थई गयुं छे के
होवापणामां मन, बुद्धि ज्ञान डूबी गया !
जे देखाय छे तेना नाम-संज्ञा नष्ट थया ?
गुण-दोष अभिज्ञा झूंटवाई गया !
चैतन्य नो एक घूघवतो समंदर
जेना नथी कोई आर के पार !
हुं ते चैतन्य सागरना पेटाळमां छुं –
के ते चैतन्य मारामां ऊठनारुं स्पंदन छे ?
अस्तित्व कोण धरावे छे –
चैतन्य सागर के विमल दर्शन ?
कोण कोनी उपज-निपज छे –
के उपज-निपज शब्द अर्थहीन छे ?
कोण कहेशे ? कोण कहेशे ?

१५८. हैयुं समसमी ऊठ्युं

हैयुं समसमी ऊठ्युं
काया कम्पी रही
बुद्धि पलवार थंभी गई

०

परिवारोमां सळगे छे आग
सम्बन्धोमां धुमाडो ज धुमाडो
शब्दो खरडायेलां छे लागणीओनी राखमां
भस्मीभूत लागणीओ - भावनाओ
राख गरम छे, दझाडे छे सांभळनाराने

०

तथाकथित सभ्य संस्कारी परिवारो !
भद्रजनो ने भद्रिक नारीओ
घरो तेमना गंधाय छे

१५९. मने जीववुं गमे छे

मने जीववुं गमे छे
कारण के मरण छे
मृत्यु जीवननो पडछायो छे
जीववा-मरवानो महारास !
सर्जन - विसर्जननुं ताण्डव !
श्वास - नि:श्वासनुं गुम्फन !
मिलन - विरहनी सन्ताकुकडी !
क्षर - अक्षरनो अपूर्व आश्लेष !
सहज-मरण जीववानुं अंतिम कर्म !
जीववुं सहज रीते !
मरवुं पण सहज रीते !
मरवुं गमे नहि
पण तेनो स्वीकार छे, अणगमो नथी.
लयबद्ध जीववानी परिणति
खुमारीभर्यां विलयनमां छे
जन्म जीवननो षड्ज गणाय
तो
मृत्यु तेनो निषाद छे

१६०. मळवा करवामां

मळवा करवामां कोईने हवे –
रह्यो नथी रस तळभार
मंडाई छे मीट हवे –
मरणने पेले पार
शेष छे देह - प्रारब्ध –
त्यां सुधी रहेशे होवापणुं
रहेशे वहेती अखंड कर्मधारा –
कर्ता विहोणी.
सम्बन्ध के संन्यास नी –
रही नथी रे दरकार
मंडाई छे मीट हवे –
मरणने पेले पार
जे आवे - तेने मळीओ - मळीशुं
याय ते सेवा-यज्ञभावे थवा दईशुं
मळवा ना मळवानो रह्यो नथी भार
मंडाई छे मीट हवे
मरणने पेले पार

१६१. अमे जाणीअे छीअे

अमे जाणीअे छीअे
एक ज रसनो स्वाद
परतत्त्व के परमतत्त्व नो रस
कृष्ण नाम छे - ते रसनिधिनुं

o

ते तत्त्वनी हयातीनो स्पर्श
पामे छे जेनी चेतना –
ते पोते ज बनी जाय छे रसमयी
रसमयी चेतनानो उल्लास
ज्यारे शब्दोमां थनगनवा मांडे
त्यारे उतरे छे कविता.

o

क्रिया प्रतिक्रियात्मक लागणीओनो
उभरो आवेगोनो कोलाहल मचावे –
आवेगोनुं शब्दोमां नर्तन
ऊर्मिगीत जन्मावी शके
कविता नहीं.

१६२. कवि हृदय होवुं

कविहृदय होवुं दुर्लभ
ते हृदयने परतत्त्वनी सत्ता
स्वयं आश्लेषे ते दुर्लभ
रसेश्वरनो रससभर आश्लेष
कविने क्रान्तदर्शन करावे.

o

क्रान्तदर्शी ते कवि
विश्वमां निहित विश्वेश्वरनी
अनंत लीलानुं अमृत चखाडे
ते काव्य.

o

शुष्कने आर्द्र बनावे –
पामरने परममां परिणमावे
अहं ने इदंमां ओगाळे
ते काव्य.

o

बीजुं काव्य अमे जाणता नथी
पछी गमवा न गमवानो प्रश्न
ज केम करीने पेदा थाय ?

१६३. जगत आखानी माय

जगत आखानी माय
वांहे वांहे धाय
मारे वांहे वांहे धाय । ई तो जगत आखानी माय ।।

अमथी आवे याद
में थी जाय पडाई साद
खुले मींचेली आंख
त्यां तो जगत आखानी माय ।।

सुखने दोडे साथ
दु:ख ने दी संगाथ
ई तो झाली राखे हाथ
हां रे जगत आखानी माय ।।

चांद जेवुं मुखडुं
सूरज नुं रूपडुं
निरखी हैयामां हरखुं – जगत आखानी माय ।।
वांहे वांहे धाय ।।

१६४. निरव अवकाशे

निरव अवकाशे शणगारेली
निबिड निगूढ एकान्ते
शून्यताना आवरणे पोढेली
परा पश्यन्ति मध्यमा
अमथा ज केम जगाडी शकाय – प्रियतमा पराने ?

तो ये सहजताअे हळवे स्पर्शी
ने परा जागी गई
त्यां तो सळवळी पश्यन्ति
कंपित थई मध्यमा
परा कहे स्मित फरकावती
द्वैतना रथे चढीने
आवी चढयुं अद्वैत
निजानंदमां मलकातुं
लई विंधाणुं मौननुं
विंधी नाख्या अमने चारेयने
मौनना विंधाणाथी विंधायेल
वाचाओने शत शत वन्दन.

१६५. मननी उन्मनी

मननी उन्मनी
विश्व विमोहिनी
भव भय हारिणी
ब्राह्मीदशा

०

चिन्मय संगिनी
तुरिय दशा
चिर तरुणी
मृत्युंजयिनी
सदा सुहागिनी
ब्राह्मीदशा
सहज समाधि
व्यवहृत मुक्ति
शब्दातीता
ब्राह्मीदशा

१६६. होवापणुं

होवापणुं जीवननो धर्म छे
होवापणाथी आखुं विश्व महेके छे
गिरिशिखरोमां सत्तानुं गुमान !
वृक्षवल्लीओमां सत्तानी शान !
पंखीओना कलरवमां होवापणानुं गान !
सरिता सागरोमां स्पंदित निज भान !

०

होवापणानी सहजताने मरडी नांखी
मानवे, मनना प्रतापे !
हुं पणुं सर्ज्युं
तुं पणुं पांगर्युं
म्हारा-तारानां ताणांवाणां;
पोतिका पारकानां जाळां माळां;

०

वलेशथी पीडातुं चित्त
मानवी मननी निपज छे
जन्म – मरणनी कल्पना
हुं पणानी परिसीमा गणाय

०

देहनुं दरेक हलन-चलन
सत्तानी उपस्थितिनो पुरावो छे
प्रेमनो उद्‌भव परमनी
उपस्थितिने मुखर बनावे छे
करुणानो सर्वांगने भींजवी देतो
प्रवाह सत्तानी सार्वभौमता
उद्‌घोषित करे छे.

०

होवापणुं प्राकृत सत्ता !
हुं पणुं मानवी माया !
प्रेम-करुणा परिष्कृत सत्ता !
"सत्ता मात्र शरीरं"
"प्रणमत गोविन्दम् परमानन्दम्"
सत्ता मात्रं भव।
निमित्त मात्र भव ।
विसृज्य कर्तृत्व- भोक्तृत्वं ।
जीवन-उन्मेष: भव ।

१६७. शाश्वतीथी जुदुं

शाश्वतीथी जुदुं अस्तित्व
'वर्तमान' ने छे ज नहीं.
सरिता शब्द बोध करावे
पात्रमां वहेता जळनो
तेम 'वर्तमान' शब्द
बोध करावे छे
प्रवहित शाश्वतीनो.
शाश्वती नथी जड
के नथी स्थिर
अनादि अनन्त जीवन
क्षणोना पात्रमां वहेतुं
होय छे.
पळने वर्तमान कहेवाथी
शुं वळे ?
नदीना बन्ने कांठा
नदी नथी
वर्तमान के भूत भविष्य
जीवन नथी
ते तो छे मानवी मने
कल्पेला तथ्यो ने
आपेली संज्ञा.

यथार्थ छे मात्र

सनातन शाश्वती

यथार्थनुं भान बक्षे छे

अमरतानुं अमृत.

वृक्षथी खरतां पीळां

चट्ट पांदडा

मरता नथी.

धरतीमां समाईने

बने छे ऊर्जा

चैतन्यथी विखूटी

पडती काया

मरती नथी

धरतीमां, जळमां, गगनमां

समाईने बने छे शाश्वती !

१६८. दु:ख थिजी गयुं

दु:ख थिजी गयुं
लोही नसोमां सुकायुं.
शब्द लाजी मर्या –
माणसनी क्रूरता जोई ।
हत्या एक नारीनी –
कोईक मकाननी ओरडीमां
लोहीनां डाघां ज्यां-त्यां –
हाथ- पग कपायेलां –
लोही भीनी लाश कोथळामां !
कोईक कारमां मूकाई –
कांडा घडियाळ खूणामां –
हैये पथ्थर मूकीने सांभळो –
कार जाय छे रेस्तरांमां -
लाश मूकाय छे तंदूरमां -
बाळवा माटे माखण रेडाय छे
ओ रे अभागा भारतीयो –
जागो छो ! सांभळो छो !
क्रूरता, नीचतानी अवधि –
आ आपणो भारत देश छे !
ऋषिओनो मुनिओनो संतोनो देश !
धर्मप्रधान आध्यात्मिक देश !

१६९. निरखवा हरिने

निरखवा हरिने ।
ग्रह चकोरता ।।

झीलवा प्रेमने ।
धर विनम्रता ।।

पामवा परमने ।
तज पामरता ।।

*परसवा गगनने ।
लह सुलीनता ।।

(* परसवा = स्पर्शवा)

१७०. हिमालयनुं चोमासुं

हिमालयनुं चोमासुं बहु ज गमे
पळमां वादळांछवाई जाय
पळार्धमां विजळी झगारा मारे
त्यां तो वरसाद धसमसतो तूटी पडे.
अंधारुं घेरी वळे.
लागे के कलाको सुधी हवे प्रलय !
ना रे ना
घडीभरमां सूर्य नारायण प्रगट थाय.
आखी खीण सोनवर्णी उज्जवळ बने.
झाड पान चळके ने झळके ने डोले
कंई वट छे कुदरतनो !
हवामां रेशमी ठंडक ने हुंफाळो तडको.
नथी पाणीना खाबोचिया; नथी गंदकी
बधु चोख्खुं ने बधुं निर्मळ,
मने अहींनुं चोमासुं खूब गमे.
सामेना हिमगिरीना दर्शन गमे.
जूना जोगी जेवा तोतिंग वृक्षो गमे.
परोढियुं तो अद्‌भुत ! रंगोनी रंगोळी

१७१. आहार बन्यो औषधि

आहार बन्यो औषधि
उपचार विहारो सघळा
निद्रामां मधु विश्रान्ति
चित्तमां निगूढ समाधि
सम्बन्धो पावन पवन
वायरा सहज मुक्तिना
पडकारो प्रगट करावे
गंगौध चरम शान्तिनो

१७२. ब्रह्म प्रकट

ब्रह्म प्रकट आ पिण्डमां ।
ईश प्रकट आ देहमां ।
पिण्ड - विलय ब्रह्मांडनुं महिं ।
विमल - विलय विश्वेशमहिं ।

१७३. ज्ञान विहोणी भक्ति

ज्ञान विहोणी भक्ति –
आन्धळी दोट मानवनी,
भक्ति विनानुं ज्ञान –
ते केवळ शब्द सन्धान
ज्ञान विहोणुं कर्म –
'हुं-मम'नो व्यर्थ श्रम.
भक्ति विनानुं कर्म –
रस रंग वगरनुं पुष्प.

०

कर्म विहोणुं ज्ञान वांझणुं.
कर्म विनानी भक्ति वांझणी.

०

ज्ञान, कर्म, भक्ति
अविभाज्य त्रणेनी युति
भक्ति कर्म ज्ञान
जाणो रे मुक्ति सोपान

०

बुद्धिमां ज्ञान; चित्तमां भक्ति;
देहनी कर्ममां रति.
आ छे जीवनयोगनी रीति.

१७४. माणी अमे आतमगोष्ठी

माणी अमे आतमगोठडी
मानव, महेरामण साथे
संवादो व्यक्तिओ साथेना –
के
प्रवचनो सभाओ गोष्ठीनां –
ते हता निखालस आतम गोठडी.
लखाया हशे अनगण्या पत्रो –
के
सहज स्फूरता भजनो गीतो –
ते हता मात्र प्रांजळ आतमगोठडी.
सम्बन्धोमां जीव्या अमे
माण्युं सख्यनुं अमृत अमे
वरसी जे स्नेहनी अमीधारा
कहेवाई व्हालथी आतमगोठडी.

१७५. मानव देहे अवसर मळियो

मानव देहे अवसर मळियो
आतमने ओळखो ।। सहितर तमे

निजने निरखो परखो निजने ।
हरिवर क्यां छे संताणो ।। सहियर तमे

काया वनरावन मनडुं छे राधा ।
नटवरने गोती ल्यो ।। सहियर तमे

रास रमीअे अमे राते ने दिवसे ।
जमनाजीने तीरे ।।
विमल श्वासमां वहे कालिन्दी
हैयडुं अमरित झरे ।। सहियर तमे

रोमेरोमे अमरित झरे

१७६. वहाला रे तमे भजो ने

वहाला रे तमे भजो ने आतमराम
आतम भजतां दृष्टि उघडे
निज पर भेद भूलाय
बहार - भीतर राम राज करे
भव भव ओसरी जाय...

स्थावर जंगम मननी भाषा
भ्रमणा जाळ रचाय
आतम भजतां भ्रमणा भांगे
हरिरस रसतो जाय.... वहाला रे तमे.

हरिरस रसतां प्रेम संचरे
हुंपणुं ओगळी जाय
प्रेम प्रतापे विमल वचन झरे
सबजन हरिजन थाय.... वहाला रे तमे.

१७७. काया छे काची

काया छे काची –
मन छे साखि फटाणुं
एना भरोसे शेना जलसा ।।
हडियुं काढे छे ई तो –
रहे नहि सरखुं –
एना भरोसे शेना जलसा ।।

१७८. चल मेरी काया

चल मेरी काया –

चल – चल - चल ।

झडपथी सघळा कामो कर ।।

झाझा छे कामो –

टांचा छे दिवसो –

झडपथी सर्वे कामो कर ।। चल मेरी काया....

हुंफाळी ओरडी -

सुंवाळी शय्या –

तेनी माया जरी न कर ।। चल मेरी काया....

रास रमे छे –

तारी साथे –

सोंपे कामो नित नूतन –

रमतमां एनी न दे दखल ।। चल मेरी काया....

जीवन तारुं –

सकल विमल जो

रमतां रमतां रमी जशे राम ।। चल मेरी काया...

१७९. हिमगिरिवासी

हिमगिरिवासी हे नभनिलमम्
शत शत वन्दन विमलतणां
अन्तर्यामिन् घट घट वासी
शत शत वन्दन विमलतणां
तुज आलोके जग आलोकित
शत शत वन्दन विमलतणां
तुज स्नेहे अभिसिंचित त्रिभुवन
शत शत वन्दन विमलतणां
आव्यो तूं टांकणे, जीवन हे
शत शत वन्दन विमलतणां
भारत-रक्षण व्रत सहियारुं
करिअे पालन हे विमल-सखा

१८०. जातने छेतरे जे जण

जातने छेतरे जे जण,
कोण रे बचावी शके तेहने ?
इहलोक के परलोकमां ?
स्वार्थ संताडवा, भूलो छावरवा
जातने पटावी ले जे जण –
कोण रे बचावी शके तेहने
इहलोक के परलोकमां ?
अन्यथी बचावी ले गुरुजन
दुष्टथी बचावी शके संतजन
पण
तेनी जातथी ज तेहने जाणीलो
कोई ना बचावी शके –
इहलोक के परलोकमां ।।

१८१. देशने बचावजे

देशने बचावजे
लोकने संभाळजे
मटे नहि लोकतंत्र
तूटे नहि स्नेहतंत
आटलुं करावजे –
करुणानिधान हे प्रभु –
जळवाई रहे एकता
नंदवाये नहि मानवता
चेतवजे बंधुता समानता
ऋषिओनी लाज रहे, आण रहे
आटलुं करावजे –
करुणानिधान हे प्रभु –

१८२. अमे गेबीवासमां

अमे गेबीवासमां रहीअे
ज्यां कोई न संगी साथी
अवधूती अमारी रहनी
अवळी छे अमारी बानी
रहिअे देहमां, देहथी न्यारा
छो ने तनमनमां अम डेरा
आ हाडचाम सहु जुअे
नथी हाम अमोने जोवानी
शब्द नाद सांभळे छतांये
अर्थ भाव ग्रहे न कोई

१८३. सद्‌बुद्धि सहुने आपो

सद्‌बुद्धि सहुने आपो
संभाळो देश तमारो
हिंसा द्वेषनी ज्वाळा भभके
खूणे खूणे जोउं धुमाडो
भावि धुंधळुं, क्षितिज धूंधळी
अकळाये छे थावयां प्राण
विमल जो हिंमत हारे
देशे कोण सहारो.

१८४. चैतन्य सागर

चैतन्य सागर घूघवे –
आ विश्वना आकारमां.
द्रष्टि पडे त्यां ''चिति'' बिराजे –
दृष्टिमहीं पण ते ज छे.
शब्दरूपे विलसे ''चिति'' –
नादमां रणकार तेनो
बिन्दुमां ने शून्यमां –
चैतन्य झाकमझोळ छे.

१८५. निर्ग्रन्थ दशा

प्राप्त कर्म करवां छतां –
लोपे नहि निज भान –
समाधिस्थ जीवन वहे –
निर्ग्रन्थ दशा ते जाण ।।

१८६. मूळ मारग

मूळ मारग जिननो समजाव्यो –
मुक्ति - धर्मनो मर्म प्रेमे प्रगटाव्यो –
छद्मस्थ रही - अनुग्रह वरसाव्यो –
मूळ मारग जिननो समजाव्यो –

१८७. आत्मार्थीना लक्षण

कषायनी, उपशान्तता –
मात्र स्वरूपनुं भान –
मोक्ष धर्म चूके नहि –
ते आत्मार्थी जाण ।।

१८८. वृत्ति वहे

वृत्ति वहे निजद्रव्यमां ।
दृष्टि परद्रव्य विमुख ।
देह नियाणां निर्जरे ।
जिन-प्रेमीनुं शील ।।

०

वाणी वदे सत्-वचनने ।
श्रुति असत्य न सांभळे ।
देह अहिंसा आचरे ।
जिन-प्रेमीनुं शील ।।

०

आराधे सम्यक् दर्शन ।
उपास्य गणे सम्यक् ज्ञानने ।
झंखे सम्यक् चारित्र्य सदा ।
जिन प्रेमीनुं शील ।।

१८९. ब्रह्मनी आराधना

ब्रह्मनी आराधना –
मानवीय चित्तनुं सृजन छे ।
ते पूर्ण छे के शून्य छे –
केम कोई कही शके ?
पूर्ण छे, वदनार, जाते –
शुं ब्रह्मनो पण साक्षी छे ?
शून्य छे, कथनार, पोते
शून्यथी शुं भिन्न छे ?

१९०. परम तत्त्व

परम तत्त्व छे सदा आपणुं
अस्थि मांसथी ढंकायेलुं
मरणधर्मी हो तनु ने प्राण
पण शरणधर्मो चैतन्य आपणुं
शिव जातां शव तनु बने छे
अग्निने सोंपवी पडे छे
''वायु अनिलं अमृतम्
अथ इदं भस्मान्तं शरीरम् ।''

१९१. जीवनयोग एटले

जीवनयोग एटले पोते ज दिव्यता, पूर्णता, अखण्डितता अने एकरस अद्वितीयता छे, एनो स्वीकार ।

जीवनना कर्मने आत्मसाधना बनाववानी अनिवार्यतानो स्वीकार. दरेक पळे कर्म थाय; क्रियामां लसरी न पडाय एनी खबरदारी.

० ० ०

जीवन योग एटले देह, मन, बुद्धि अने प्राणने वैज्ञानिक कर्मनां माध्यमो बनाववा काजेनी शुद्धिसाधना.

वैज्ञानिकता मागी ले छे संतुलन, समत्व, सहज अवधान.

० ० ०

सत्याचरण विना समतुला निष्पन्न न थाय.

समतुला समत्वनो परिमल गणाय.

समत्व सहजतामां परिणमे छे.

० ० ०

संसारथी सुखेच्छा होय तो सत्याचरण संभवे नहि.

संसारी दुःखोनो भय होय तो पण सत्याचरण शक्य थाय नहि.

सुखेच्छा राग-द्वेषनी जनेता जणाय छे.

० ० ०

मारुं जीवन यज्ञचक्रप्रवर्तकनो नमूनो गणाय.

पोतीकापणुं शोध्ये जडतुं नथी.

पारकापणुं क्यांथी उद्‌भवे ?

सत्यदर्शन; सत्याकलन; सत्याचरण; सत्यधर्मप्रवर्तन;

क्षणदर्शन; क्षणावगुंठनमां सन्तायेली शाश्वतीनुं मुखदर्शन !

क्षण एटल शाश्वतीनो उन्मेष –

शाश्वतीमां क्षणभंगुरता केवी ?

अमृतत्वमां मर्त्यता केवी ?

जन्म-मरण छे प्रकृतिनी जीवनलीला.

१९२. मारी एक आंतरिक ईच्छा

मारी एक आंतरिक ईच्छा
अटलजी यशस्वी थाओ
यश भारतीय संस्कृतिनो
यश वैदिक मूल्योनो
नथी व्यक्ति, समूह के दलनो
निमित्त व्यक्ति थाये
जे थया निमित्त अटलजी
पुरुषार्थ अेमनो साचो
पथ जो के रह्यो कांटाळो
यश नव भगीरथने आपो
कल्याण सकलनुं थाओ
कल्याण जगतनुं थाओ

१९३. ब्रह्म स्वयं बन्युं

ब्रह्म स्वयं बन्युं ब्रह्माण्ड ।
बन्यो देह ज हरिमन्दिर ।।

विश्वेश्वर व्यापे विश्व ।
व्यापे श्रीहरिवर मम देह ।।

द्वैत – द्वन्द्व ओसरी गयुं ।
भेदनी वात ओगळी गई ।।

मृत्यु गान श्वासोच्छ्वास ।
जन्म – मरण जीवन रास ।।

१९४. आक्रंद करे छे मात भारती

आक्रंद करे छे मात भारती
हाथ तमारे तेनी नियति
शीद विलंब करो छो नटवर ?
आवो देश सम्हालो सत्वर...

कृषि अवलंबित, ऋषि-आरक्षित,
कृषि नथी त्यां, ऋषि नथी
कृषिनी करीने घोर उपेक्षा
करशो केम देशनी रक्षा ? ...

१९५. शानो अजंपो

शानो अजंपो हैयाने
कोरी खाय छे ? आ केवी वेदना
अखिलाईने दझाडती रहे छे ?
नथी आ दुनिया पासेथी कई लेवुं-देवुं !
नथी रह्युं जरीके करवापणुं के रह्यो कर्ता भाव !
छतां अमेरिकानी चूंटणीमां थयेल
लज्जाजनक गेररीतिओ –
मध्यपूर्वमां इजरेल तरफथी थतो नरसंहार –
पॅलेस्टीन युवकोनो मूर्खामीभर्यो पथ्थरमारो –
श्रीलंकामांनो अंतहीन हिंसाचार –
मने केम लज्जित अने व्यथित बनावे छे ?
पाकिस्तानमां प्रसरेलुं अराजक अने
अनिश्चित भावि मने शीदने दु:ख आपे छे ?
भारतमां छेल्ले पाटले जई बेठेला
राजकीय नेताओ, प्रशासकोनो निर्दयी
भ्रष्टाचारी हिंसक व्यवहार मने केम
बेचेन करी मूके छे ?
आ ते केवी करुणा जे जीववुं वसमुं बनावे

१९६. अभिव्यक्तिनुं ऐश्वर्य

अभिव्यक्तिना गंगासागरनुं ऐश्वर्य वर्षो सुधी माण्या पछी अखिलाई हवे निरुपाधिक अस्तित्वना गोमुख भणी अभिमुख थई छे.

०

उपस्थितिनी अशब्द भाषामां अंतेवासीओ साथे संवाद थवा मांड्यो छे.

०

मौनमां प्रवाहित थनारी आप-ले, शब्दोनो भार उचकवा प्रवृत्त थती नथी.

०

दृष्टी थी व्यक्त थनारा अभिप्रायो के आलोक धाराओने शारीरिक सान्निध्य के सामीप्यनी अपेक्षा रही नथी.

०

अभिव्यक्तिना स्थूल साधनो खरता जाय छे. सूक्ष्म माध्यमो अव्यक्तनुं ऐश्वर्य प्रगट करवा लाग्या छे.

१९७. हर संसारी

हर संसारी भक्त होतो नथी.

हर भक्त संसारी होतो नथी.

संसारी व्यक्ति संसारमां आसक्त थईने जीवे छे.

तेने सुखनी उत्तेजना, दु:खनो विषाद गमे छे.

हुं-मारानुं मायाजाळ प्रिय लागे छे.

मुसीबतनो मार्यो प्रभूने क्यारेक याद करे.

इच्छा-वासनानी पूर्ति माटे याचना करे.

तेनी याद के याचना सोदो कहेवाय. भक्ति नहि.

०

भक्त संसारमां जीवे खरो; पण संसारनो दास थईने नहि.

तेने सुख-दु:ख प्रत्ये गमा-अणगमा रहेता नथी.

तेने माटे संसार तो देहप्रारब्ध गाळवानुं क्षेत्र होय छे.

प्रभू प्रत्येनी प्रीति प्रकट करवानुं क्रीडाधाम होय छे.

प्रभू पण भक्त साथे रिसामणां-मनामणांनी रमत रमे छे.

संताकूकडी रमवा, आगळ पाछळ नाचता होय छे.

भक्त संसारमां प्रभू साथे, प्रभू माटे जीवे

अने श्रीहरि भक्त साथे रमवा काजे संसार रचे.

संसार एटले भक्त-भगवाननी प्रणयलीलानुं

कुंज-निकुंज; ते ज वृंदावन अने मधुकुंज.

१९८. मने गोठतुं नथी

मने गोठतुं नथी.
चेन पडतुं नथी.
हैयुं चिराय छे.
अकळामण उभराय छे.
गुजरातनो वर्तमान बिहामणो छे.
भारतनी दिशाहीनता चिंता उपजावे छे.

१९९. मारे कहेण आव्युं

मारे कहेण आव्युं श्रीहरिनुं –
जवुं पडशे सहियर वनरावन.
प्राणोमां वहेती जमुनाजी –
दिलडे वागे वांसलडी.
बधी वृत्तिओ गावलडी –
सांभळे निहारे हरिवरने.
हुं जउं छुं व्रजमां - आ चाली –
नहि पाछी फरुं तम दुनियामां.

२००. कोईए गगनने कह्युं

कोईए गगनने कह्युं –

केवो मजानो तारो नीलवर्ण !

गगन कहे –

शून्यता पासे वळी वर्ण केवो ?

कोईए गगनने कह्युं –

गजबनी छे तारी व्याप्ति

होवापणुं ज नथी; त्यां व्याप्ति कोनी ?

गगन छे एवुं तो मनुष्य कहे छे

जेने रंग नथी के रूप

जेने आहार नथी के देश

तेना होवापणानो शो आशय ?

छे शुं अने नथी शुं ?

मानवने केवो अभरखो के शब्दथी जीवनने स्पर्श करवा मथ्ये जाय

बोल अने बोलवानी आ ते केवी घेलछा ?

जोवुं; जाणवुं; कहेवुं; सांभळवुं –

शुं आ क्रियामांथी ज जीवन पुरवार थाय छे ?

विषय-शून्य वृत्ति

एटले के जे देखाय ते विषय न बने (विषयपणु–

भोग्यपणुं)

वृत्ति – शून्य चित्त

एटले के निष्पन्द चेतना

क्लेश शून्य जीवन

एटले के अकर्तृत्व; अभोक्तृत्व; अद्रष्टुत्व.

२०१. गुजरातनी धरतीनी

गुजरातनी धरतीनी वेदनाभरी
मूंगी अकळामण !
मूंगा गगनना मूक निसासा !
कोण समजशे ? सांभळशे ?
सरीताओ सुकाई !
वनराजीओ करमाई !
पक्षीओ कलरव करतां नथी.
पशुओ भांभरवुं भूली गया.

०

छेल्ला एक वरसथी
माँ गुर्जरीनुं सत्त्वहरण
थई रह्युं छे.
हिन्दु राष्ट्र बनाववुं होय, तो ये
जे रीत – रस्म, जे भाषा,
जे हिंसाचार, वापरवामां आवी रह्या छे
ते मानवीय नथी. लोकतांत्रिक क्यांथी होय ?
गुर्जरी सन्त-वाणीनो गळो रूंधवामां आव्यो.

०

आवता दस बार दिवसो केम जशे ?
हडहडता जुठाणा; अभद्र आरोप-प्रत्यारोप;
छापाओनो, टी.वी., ई-मेल्नो निर्दय दुरुपयोग;
पैसानो दंभभर्यो देखाडो;
शुं जोवुं पडशे ? शुं सांभळवुं पडशे ?
हैयुं अत्यारथी धूजे छे ! काळजुं कंपे छे !

२०२. आजे नाताळनो दी छे

आजे नाताळनो दी छे
हां
आजे येशूनो दी छे
पण
सूनुं पड्युं छे बेथेलहेम
अने
सूनुं पड्युं छे जेरुसलेम
०
आजे येशूनो दी
आजे गांधीनो दी
पण
सूनुं पड्युं सत्याग्रहधाम
अने
सूनुं सूनुं छे सेवाग्राम
०
सत्य अहिंसा मंत्र बापुनो
मैत्री करुणा मंत्र येशूनो
सांभळ्यो'तो भई दुनियाअे
पण
समजवुं नथी; जीववुं नथी
प्रण जाणे अम सहु कोईनो
०
अमारे करवी छे व्यक्तिपूजा
उजाणी करवी जन्म-मृत्युनी
पण
समजवुं नथी; समज्या तो पण जीववुं नथी
राचवुं छे जुठाणामां; वैरभाव अने हिंसामां.

२०३. चित्त स्वस्थ

चित्त स्वस्थ
बुद्धि आत्मस्थ
छतां य केम
सळवळे
व्यक्त थवा
आर्त अंतरनुं !
कदाच
करुणानो अंतराय
स्पंदित करतो हशे
नि:स्पन्द आतम तत्त्वने
नाभिकमले नादबिन्दु
ब्रह्मरन्ध्रे अमृतसिन्धु
भिंजवे रात दिवस
रोम रोम अखिलाई
प्रक्षालित शब्द विहग
विहरे शून्य गगने
वैखरीमां पडघाये
विमल विहग लीला

२०४. प्रारब्ध शेष काया

प्रारब्ध - शेष काया ।
संचित - संचालित माया ।
कामकाज जुओ ने तेनुं –
कामकाज तेनी छाया
मृगजळ सम चळके छाया ।
मृगजळ सम चळके राया
कर्तृत्व भोक्तृत्व निःशेष ।
द्रष्टुत्व विलोपित सविशेष ।
श्वासे श्वासे अमृतप्राशन ।
स्नेहसभर संतृप्तीनुं ।
वर्तमान पेखो कर्पुर अग्नि ।
क्षणमात्र प्रकाशित सुरभि ।
पलक झपकतां बेउ विसर्जित ।
धरा - गगन आलोकित सुरभित ।

२०५. संचित संचालित काया

संचित संचालित काया
हलन चलन तेनी माया
कर्ता भोक्ता जडे नहि
नीरवतानी गहन गुफामां
गयो छे दृष्टा खोवाई
सदेह देखाये जगमां
विमल विदेही अंतरमां

२०६. भव भय कोने

भव भय कोने
विस्मरे हरिने जे
हरि स्मरणमां
श्वसन शयन अशन
भव तेने नंदनवन
धरती माथे भमवुं रमवुं
नेह गगन साथे
प्राणिमात्रने करवुं वन्दन
ते विमल ईशअर्चन

२०७. काया नगरी

काया नगरी पंढरी
वाणी वदे ते नित्यभजन
चित्त धरे स्हेजे समता
जुअे छे नरमां नारायण

०

कायामां सन्तुलन - राजयोग
वाणीमां सहज संयम - ज्ञानयोग
चित्तमां सहज समत्व - भक्तियोग

०

काया वाचा मनसा
सत्यने समर्पित जीवन
ते ज म्हारुं श्रीहरि-अर्चन

०

आ जीवननी फोरम न्यारी
आ जीवननो स्वाद अनेरो
कोई चाखी जुअे
कोई जीवी जुअे

२०८. सन्त श्रेष्ठने करुं नमन

सन्त श्रेष्ठने करुं नमन
ज्ञान-भक्ति-वैराग्य मूर्तने
विनम्र भावे अभिवादन

०

शिखवाडी जुगत ध्याननी
आपी दीक्षा जनसेवानी
जीवन साधक थई जीववानी
भक्त राजने करुं नमन
विनम्र भावे अभिवादन

०

गांधी बापुना लाडकवाया
राजेन्द्र - जवाहरना मित्रसखा
राष्ट्रसन्तने करुं नमन
विनम्र भावे अभिवादन

०

विमल जीवनना घडवैया
वैश्विक दर्शन उद्‌गाता
अभंग भजनोना स्रष्टा
क्रान्ति ज्योतने करुं नमन
तुकडोजीने अभिवादन

२०९. हैयानो हार

हैयानो हार म्हारो हिमगिरि मोकले
विमल वचने संदेशो रे
दोडो ने पूगो तमे खेतरे ने खोरडे
भींजवो धरती ने आभ

२१०. अमारि प्रवर्तन

अमारि प्रवर्तन
अनासक्ति प्रवर्तन
आत्मार्थ प्रवर्तन
सम्यक् त्रयी प्रवर्तन
कषायमुक्ति प्रवर्तन
मोक्ष अभिलाष प्रवर्तन समाधिमरण
सदेह आत्मानुभवीनुं शरणुं
शरणागति जीववानो पुरुषार्थ

२११. इक दिन अमथा

इक दिन अमथा –
साद पडाई –
विश्वंभरने, लोल ।।
त्यां तो –
सळवळी उठ्या हैयडे –
सत् चित् आनंद, लोल ।।
सत्ये आप्युं अभय-दान –
ने चितिअे चिर अवधान –
आनंद उछाळे, रोमे रोमे –
जीवन मंगल, लोल ।।

२१२. अकलंक हरिनी अकळ लीला

अकलंक हरिनी अकळ लीला
मानवी - मन केम जाणे ?

जाणवानो मोह मूकी
जे सुजन हरि शरण ले

ते अबघुनां काज सर्वे
श्री हरि पोते ज संवारे

२१३. बापू

बापू
तमे हता सूरज
संसारने प्रकाश आपनारा
अमे छीअे
नानुं सरखुं कोडियुं

०

छतांय
तमे आपेला
सत्य + अहिंसा तत्त्वने
प्रेम + करुणाना प्रकाशने
छेल्ला श्वास सुधी
प्रसरता रहीशुं.

०

भारतने जगाडता रहीशुं
प्रबोधता रहीशुं

२१४. सहजात्मस्वरूप ज गुरु तत्त्व

सहजात्मस्वरूप ज गुरु तत्त्व

दरेक व्यक्तिना हृदयमां गुरु बिराजे छे. सत्य चींधे छे. सत्य जीववा हाकल करे छे. बाहर सदेह आत्मानुभवीओ पण सत्य तरफ इशारा करता होय छे.

पण अंदरना के बाहरना इशारा, संकेत सांभळ्या पछी के समज्या पछी जीववानो पुरुषार्थ दरेक प्रभुप्रेमीने करवो पडे. अन्य कोई पण तेना एवजमां जीवी न शके.

तमारा अंतर्यामी गुरुतत्त्वना सूचनो झीलवानी तेम ज जीववानी बुद्धि + शक्ति तमोने मळो.

२१५. गुरुपूर्णिमा निमित्ते - स्वजनो जोग

जीवन पोते ज गुरु छे,

परम गुरु छे.

अव्यक्त के अमूर्त जीवन गुरु तत्त्व छे.

व्यक्त अने मूर्त जीवन सगुण साकार गुरु छे.

अमूर्त असीम छे. अनन्त छे.

तेने जाणवुं-स्मरवुं ते वन्दन गणाय.

मूर्त सगुण साकार होई संपर्क-सम्बन्ध शक्य छे.

पदार्थ मात्र सगुण साकार गुरु गणाय.

तेमना स्वरूप, गुणो, शक्तिनो परिचय केळववो.

पोताना भरण-पोषण माटे शक्ति-सेवन करवुं.

सेवन अने ग्रहण ते ज नमन कहेवाय.

गुरु पूर्णिमाना पावन अवसरे मूर्त-अमूर्त,

व्यक्त-प्रच्छन्न, सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार गुरुनुं आ रहस्य समझीअे.

जीवन-विभुने, आदि-गुरुने नमिअे.

जीववानुं कर्म विशुद्ध बनावीअे

गुरु-अर्चना करिअे.

सहज सन्तुलित कर्म वडे गुरु पूजा करिअे.

२१६. प्रणाम

शिव – आदिनाथ - पूर्ण गुरु

हरिना गुरु हर; हरना गुरु हरि – हरिहर !

शिवना गुरु शक्ति; शक्तिना गुरु शिव – शिवशक्ति

वेदव्यास - आदिगुरु "व्यासोच्छिष्टं जगत् त्रयम्"

प्रथम प्रणाम – सदाशिवने ।

द्वितीय प्रणाम – आदि गुरुने श्री व्यासने ।

तृतीय प्रणाम – निजगुरुने – संतजनने ।

चतुर्थ प्रणाम – सकल सद्ग्रन्थोने ।

पंचम प्रणाम – समग्र जीवन-विभुने ।

सदैव प्रणाम – सखा-सुहृदोने ।

२१७. हरि शरण रही

हरि शरण रही, हरि स्मरण करी
जीवन यापन करवुं रे...
प्राप्त परिस्थिति स्वीकारीने
निजानंदमां रमवुं रे...
हरि शरण रही...

निजानंदमां रमनाराने
सहजावस्था आवी वरे
हरि शरण रही...

विमल सूत्र आ अनुभव प्रेरित
स्नेहीजनोने अर्पित रे.
(निज मित्रोने अर्पित रे)...
हरि शरण रही...

२१८. समाधिस्थ जीवन

समाधिस्थ जीवननी ओळख –
सहियर तने करावुं रे –
कर्म - विकर्म - अकर्म नथी –
त्यां एक सहजता विलसे रे ।

जीवन वारि रहे प्रवाहित –
करुणा बनीने छलके रे ।

वर्धमान महावीरे अेने
वीतराग पद भाख्युं रे ।

विमल जीवनमां आराधे छे
काया वाचा मनसा रे ।

विश्वमित्र बनी सहुने साथे –
विमल मरण जीते रे ।

२१९. विमल विलोकन

विमल विलोकन देखाडे छे –
व्यष्टि - समष्टिनी भ्रमणा ।

ब्रह्मांड निखिल छे तेजोमय –
आतम आदित्य विराजे छे ।

आतम रस नीतरे अहर्निश –
सचराचर प्रक्षालित छे ।

सभानता ते निजस्वरूपनी –
तीर्थंकर पद बक्षे रे ।

२२०. वायरा वसन्तना

वायरा वसन्तना वाये के, सहियर,
केसुडाना रंगे मारुं दिलडुं भिंजाये....।

२२१. लेवाने हरिनाम

लेवाने हरिनाम छे –
देवाने मबलख प्रेम छे –
दशे दिशा जागीर प्रसरी –
मॉंजी मालामाल छे ।
अखिलाईमांथी प्रेमनो धोध
वहेवा मागे छे, दशेन्द्रियोथी
आत्मौपम्यनुं गंगाजळ
नीतरे छे.
देश-दुनियानी अत्यन्त
खेदजनक परिस्थितिमां पण
जीवन गंगोत्रीनी धारामां
चेतना भींजायेली रहे छे !
''अहो बत आश्चर्यम् ।''

२२२. ईशना आश्लेषमां

ईशना आश्लेषमां
जीववानुं थाय छे ।।

कवच विभुना स्नेहनुं
अविरत अखंड जणाय छे ।।

अनिकेत निर्धन विमलने
स्नेह सहुनो सांपड्यो ।।

सन्त योगीजन कृपानो
धोध भींजवतो रह्यो ।।

ऐंशी वटाव्या पछी
देह श्रमित कलान्त छे ।।

प्रारब्ध पण तेनुं विलक्षण
विश्वैक्यनुं अक्षुण्ण छे ।।

सत्यनी कपरी चढाई
संन्यास पथ दुर्गम जटिल ।।

पूर्वजोना पुण्य थी
सहज सरळ बनी जाय छे ।।

श्रद्धा सुमन अर्पण करुं
विश्वने विश्वेशने ।।

साथी स्वजन सहयोगीने
वन्दन करुं विमलेशने ।।

२२३. चालो घसाईने

चालो घसाईने उजळा थईअे
माणसाईना दीवा बनीअे
घसाईने चन्दन, सुगन्ध बने छे
घसाईने अहंभावने आत्मभाव बनवा दईअे
प्रतिक्रियाओने समत्व बनवा दईअे
अहं-मारुं ने सहियारुं बनवा दईअे
घरे घरे माणसाईना दीवा प्रकटावीअे
माणसाईना दीवडा प्रकटशे त्यारे ज
सहभागिताना गणतंत्रनो पायो नंखाशे
गामडे गामडे गणतंत्रनुं चणतर घडाशे

२२४. विमल गुंजन

अविरत

अविकल

अविचल

उन्मनी दशा विलसे ।

दैहिक

बौद्धिक

मानसिक

व्यापार निर्बाध चाहे ।

आत्मरति

ईशप्रणति

श्वसनमां सहज प्रवहे ।

२२५. श्रीहरिनाम

श्रीहरि नाम करे सहु काम ।
हुं तो मात्र जपुं छुं नाम ।।

नामजपननी जुगत जाणी लो ।
तमने पण मळशे आराम ।।

o

आत्मतत्त्व छे सत्त्व जीवननुं ।
अणुरेणुमां तेज आतमनुं ।।

देह पात्र झळहळतुं राखे ।
दिव्य चितिशक्तिनुं भान ।

२२६. अभिव्यक्ति

अभिव्यक्तिनो आवेग केम सळवळे छे ?
शब्ददेह धारण करवानी अदम्य इच्छा केम जागती हशे ?
होवापणानी संतृप्ति मौन दशामां परिणमे छे !
पोतानी साथे पण असंगता रहे छे !
द्रष्टुत्वनो आह्लाद अखिलाईमां स्पंदित थतो होय छे
पछी अक्षरोमां अभिव्यक्त थवानी उत्कण्ठा केम ?
सः अकामयत् !
एकोऽहम् । बहुस्याम !
जीवननुं एकत्व अनेकता केम धारण करे छे ?

२२७. पंथ निर्वाणनो

पंथ निर्वाणनो भाखियो गौतमे,
सिद्ध थयो अर्थ सिद्धार्थनो जे दिने ।

तृष्णातणा शमनमां क्लेशथी मुक्ति छे,
क्लेशथी मुक्ति चिरशान्ति बक्षी रहे ।

शान्तिमां दु:खनो अंत आवी रहे,
दु:खनो अन्त पोते ज निर्वाण छे ।

थाजो तमो निर्वाणना पथिक सहु,
बुद्ध-धम्मना आराधको थाओ सहु ।।

२२८. अनाकार ग्रही आकार

अनाकार ग्रही आकार –
बने छे सर्वाकार ।

अनाधार ग्रही आधार –
बने छे सर्वाधार ।

अनादि अनंत ग्रही आदि ने अंत –
बने छे सादि-सान्त ब्रह्माण्ड ।

अव्यक्त स्वयं ज व्यक्त –
रमे छे जन्म-मरण अविरतत्त ।

अनामी - अरूप ग्रहे नाम ने रूप –
रमे छे अकाल, बनीने भूत, भावि ने वर्त ।

अकलंकनी लीला जुओ विमल –
निष्कलंक बनी रमतां रमतां ।

२२९. हार मानो नहि

हार मानो नहि
आंसु सारो नहि
कदीअे सहियर
संबंधोना समरमां ।।

स्वीकारो
सामी छातीअे
वाक्प्रहार
सहु स्वजनोना ।।

छो ने रह्युं
लोहीलुहाण
क्षतविक्षत हैयुं
विगलित तव वक्षमां ।।

हसते मुखे
मधुर वचने
प्रतिसाद झरन्ता
रहो स्निग्ध सख्यना ।।

थवा दो संवेदन
निजजन हृदये
भीतर वसन्ता.

आतमराजना

२३०. माझम राते

माझम राते
श्यामल तिमिरे
नाद निनादे
वांसळीनो ।

''संभवामि –
युगे युगे''
वधावी लो जी
हरि संभवने
कहे वांसळी
हरि-जनने ।

अमासना
बोलकणा मौने
धरपत आपी भारतने
हरि आव्या
हरि आव्या रे
आपो वधामणा
वालीडाने ।

२३१. देहमां विलसे

देहमां विलसे
धातुनी समता
वाणीमां प्रगटे
सत्यनी गरिमा
दीपावे दिलमां समत्व करुणा
बुद्धिमां गरवी
हिमगिरिनी स्थिरता
शणगार जोई लो सहियर
श्रीहरिना विमलजनोना ।।

२३२. मारे श्वासे श्वासे

मारे श्वासे श्वासे राम रमे
अने हैये सहियर राम रमे
मुने राम जीवाडे, राम रमाडे
जीवतर आखुं मलकी ऊठे...मारे श्वासे श्वासे

मारे श्वासे वागे वांसलडी,
अने रोम रोम राधा हरखे...मारे श्वासे श्वासे

मारे श्वासे प्रणव ज्योति प्रगटे,
अने नाभीकमल मकरन्द खीले...मारे श्वासे श्वासे

२३३. वळी संभळाय छे

वळी संभळाय छे विलोपननो राग :
पूर्णताथी ओतप्रोत शून्यता
चेतनानुं उपादान !
स्वसंवेद्यताथी समृद्ध शून्यता
निर्वाण दशा कोने कहेवाय !
कदाच निर्ग्रन्थ दशा पण !
सरिता अेटले प्रवाहित जल
विमला अेटले स्वसंवेद्य चैतन्य
सरिता रहेती रहे छे
विमला जीवी रही छे
सरितानां नीर सागर भणी
विमलजीवन विलोपन भणी.
सागरमां भळीने सरिता अमरता पामे
देह विलयन थकी विमला वैश्विकता पामी.
सदेहतामां विदेहता !
व्यक्तित्वनां आवरणमां वैश्विकता !
सत्य-ज्ञानं-अनन्तम् ।
सान्तता देखाय ! अनन्तता जिवाय.
धन्यतानी परिसीमा !

२३४. अगम आवासे

हालोने सहियर जईशुं रमवा
भेळां पेले पार रे...
भोम अदीठी, दिशा अजाणी
साथ न कोई संगाथ रे... हालोने
अगम आवासे नाद रणझणे
कोऽहम सोऽहम रे...
शब्द कोडिया झगमग झगमग
अर्थ प्रकाशे रे... हालोने
प्रकाश जळमां खंखोळीशुं
खोळियां साथे रे...
हुं - मारां ना मेल धोवाशे
थाशुं निर्मळ रे... हालोने
निर्मळ चित्ते प्रभु प्रगटशे
रमशे साथे रे
विमल वचन कदी जाय न अेळे
जोशुं परचो रे... हालोने

२३५. अमे रमीओ रे

अमे रमीओ रे
रमीओ रे
श्रीहरि साथे रमीओ रे.

क्रीडांगण ब्रह्मांड अमारुं
चांद-सूरज अम भेरु रे
नभमां अंकित तारामंडल
रमे, रमाडे अमने रे...
दिवसे रमीओ
राते रमीओ
श्वासे श्वासे रमीओ रे
अमे श्रीहरि साथे...

हरि अम भीतर
अमो हरि भीतर
हरखी हरखी अमे रमीओ रे...
ग्रह-नक्षत्रो
संगी साथी
फेरफूदरडी अमे रमीओ रे...
नभमंडलमां
रासमंडल रची
नित वनरावन रहीओ रे...

२३६. पिंजरामां

पिंजरामां नीलगगन–
अनुभवी शके जे
जीवन कृतार्थ ते पंखीनुं
पळे पळे श्वासे श्वासे

अहं छे पाळेलुं पंखी
युद्ध वळी शेनुं ?
भ्रम चणनारा
पंखी सामे ?
कामनुं नथी काम

अहीं तो विश्राम ज विश्राम
प्रारंभे, मध्ये अने अंते
अविकल अविचल आराम.

२३७. तत्त्वमांथी जन्मे छे

तत्त्वमांथी जन्म छे, ने
पांच भौतिक देहमां
निजतेज रूप निवास छे

*

तत्त्व मारुं स्वरूप छे,
निजतेज रूपे प्रगटतुं
बन्धन नथी; मुक्ति नथी
बस, तेजनो अंबार छे

*

कर्तापणुं नथी तत्त्वमां
भोक्तापणुं नथी तेजमां
दृष्टापणुं नथी स्पर्शतुं
आ तेजना अंबारमां

*

जलराशिमां जन्मे तरंग
विरमे पछी जल महीं
बन्धन कयुं ? मुक्ति कई ?
आ तेजना अंबारमां

*

तेजरूपे विहरुं छुं
विरमीश हुं निजतेजमां
नथी जन्म के मृत्यु, अहीं
आ तेजना अंबारमां

*

तत्त्व प्रगटे तेजरूपे
तेज रक्षे तत्त्वने
सहजात्मरूपे विलसती
छे रम्य गाथा विमलनी.

२३८. जन्म मरणने पेले पार

जन्म मरणने पेले पार,
दीठो अेवो दिव्य देश.
ज्यां नथी धरती के गगन,
ने नथी सूरज के सोम.
नथी पंचमहाभूतोनी माया,
के नथी त्रण गुणोनी छाया.
सत्य असत्यने ज्यां नथी प्रवेश,
दिवस रात्रिनो ज्यां अगम संश्लेष.
अमृतथी अमरता झळहळे,
अनश्वर नित्यता निष्पंद रहे.
दीठो अेवो अवनवो प्रदेश,
ज्यां वाणी विलोपे विनम्रभावे.
मनडुं ओगळीने प्रज्ञामां भळे,
आत्मा परमात्मानी भ्रमणा भांगे.
ने विमल प्रेमनो प्रकाश संचरे,
अमे जाणीअे छीअे अेक ज रसनो स्वाद.

परम तत्त्वनो रस कृष्ण नाम छे ते रसनिधिनुं,
ते तत्त्वनी हयातिनो स्पर्श पामे छे जेनी चेतना.
ते पोते ज बने छे रसमयी चेतनानो उल्लास,
ज्यारे शब्दोमां थनगनवा मांडे त्यारे उतरे छे कविता.

२३९. म्हारी मोंघेरी देहलडी रे !

म्हारी मोंघेरी –
देहलडी रे !
प्यारा माधवनी
मोरलडी रे !
प्रीत सागरनी
माछलडी रे !
साचा संतोनी
सेवकडी रे !
जुगो-जुगनी
भमकडी रे !
विधिना विश्वोनी
वांसलडी रे !
वागे विधविधनी
सुरलडी रे !
मोहे व्हालमनी
चित्तलडी रे !

२४०. ज्यारे ज्यारे जवुं पडे छे

ज्यारे ज्यारे जवुं पडे छे देशथी दूर
हैयुं कचवाय छे, जीवडो खचकाय छे,
छे विश्व प्रभुनी काया
मळे छे सघळे सहुनी माया
छतांय ते दूरी प्राणोने खूंचे छे
केम ? न जाणे केम !
मळे छे सगवडभर्या निवासो
करे छे सहयोग सहज स्नेहथी साथीओ
थाय छे सभाओ गोष्ठिओ प्रवचनो
शृंखला बंधाय छे मळनाराओनी अहो !
छतांय ते दूरी प्राणोने खूंचे छे
केम ? जाणे, केम !
शुं खूटतुं हशे - हवामां ? पाणीमां ?
लोकनजरोमां अने शब्दोमां ?
अेवुं तो शुं छे भारतनी धरतीमां ?
कंगाळ-भीरु-कमजोर जनतामां ?
जाण नथी, छतां कंईक छे खरुं !
जे छे ते प्राणोमां वणाई गयुं हशे !
ते अगम अगोचर अनाम सत्त्व
खूटे छे दुनियाना हरेक देशमां
ते अगमनी हवा मळती नथी क्यांये;
आंखो उपवासी ने प्राणो उपवासी
थई जाय छे - अमारा भारत विना

श्वास रुंधाय छे ! जीव गूंगळाय छे !
एटले ज दूरी खूंचती हशे,
हैयुं कचवातुं हशे ने
जीवडो खचकातो हशे.
कचवाते हैये ने खचकाते जीवडे
फरिये छिये - तारे काज, प्रभु !
पण अंतर तो वसे छे भारत
वाट जोईये छिये के क्यारे
अंत आवशे आ विराट भ्रमण-भ्रमणानो !

२४१. मारामां जीवन छे रोमे रोम

मारामां जीवन छे रोमेरोम वणायेलुं
जीवनमां हुं वणायेल छुं – सर्वत्र, सर्वथा, सर्वदा.
विमल अभिव्यक्ति अव्यक्तनी सोडमथी मघमघे छे
रोजेरोज रात्रे मरवानो अभ्यास थाय छे
रोजेरोज प्रात:काळे नवजन्मनो उल्लास अनुभवाय छे.
दिवसभरना सम्बन्धो मुक्तिदान आपतां रहे छे
दिवसभरनां कर्मो संन्यासनुं वरदान वरसावनारा रहे छे
देवतात्मा नगाधिराजनां दर्शन आत्मदर्शननो पर्याय बन्यो छे
अविचल, अविकल, अविरत, अभिराम वहेवडावे छे देवतात्मा हिमालय
देह-मन-प्राण उपर चढेली मलिनताने धोई नाखे छे नगाधिराज
रोमे रोमे निवसित दिव्य ऊर्जा स्पंदित थई संचरे छे अखिलाईमां
मात्र देवतात्मानां दर्शनथी
वेदोपनिषदोमां 'आदेश-उपदेश'ने सजीवन करे छे नगाधिराजनुं सान्निध्य
ऋषिसंस्कृतिना हार्दने मुखर करे छे हिमालयनुं अमोघ मौन
पृथ्वीना मानदंडसमा नगाधिराजने शत वार वंदन,
सहस्र वार नमन.
भारतनी असंख्य सरिताओना पिताने वारंवार नमन-वंदन.
पृथ्वीना मानदंड शा नगाधिराज देवतात्माने शत वार वंदन
सहस्र वार नमन.
भारतना अद्वितीय ऐश्वर्यपुंजने वारंवार नमन-वंदन.
देहनो कणेकण हिमालयमां समाई जवा उत्सुक छे
पार्थिव अभिव्यक्ति दिव्य अव्यक्तिमां ओगळी जवा आतुर छे
प्राणोनुं आवागमन शान्त थई जवा तत्पर छे
तरंगो जलाशयमां भळी-गळी जवानी प्रतीक्षामां छे

२४२. परोढ थयुं

परोढ थयुं
उष:काल उदय पाम्यो
रंगोनी रंगीली रंगोळी आपमेळे प्रसरती गई - गगन आखामां.
अने भाणे क्षितिज पर पग मूक्यो.
दशे दिशाओ झळांहळां थई झगारा मारवा लागी.
सूरजनां हूंफाळां किरणोअे ममतामयी थपकीओ
दई सृष्टिने जगाडी.
सूतुं जगत जागी ऊठ्युं.
जलाशयो मरकवा लाग्यां ने
नानकडा छोडवाओनुं स्मित बगीचामां रमतुं थयुं
वृक्षोनी डाळीओ पर प्रशान्त प्रसन्नता पथराई
पंखीओअे स्वरलहेरीओथी आसमन्त गुंजावी दीधुं
पवननी मंद मृदु लहेरखीओथी वातावरण स्पंदित थई ऊठ्युं.
सत्‌चित् आनंदनां आवां नखरां छतां,
माणस पूछे छे – क्यां छे ईश्वर, क्यां छे दिव्यता ?
नानी छोकरीओ घरमां ढींगलीओ माटे मकान रचे छे
रसोईनो अने जमवा-जमाडवानो अभिनय करे छे
तेम मोटेराओ विश्वमंदिरमां
पोतानी सांत्वना काजे मंदिरो बांधे छे !
अर्चना, सेवा, पूजानो अभिनय करे छे
आखुं जीवन ज अर्चना केम ना बने ?
सघळो वाणी-व्यवहार ज प्रार्थना केम ना बने ?
बधा ज संबंधो ज्ञानमूलक भक्ति केम ना बने ?

२४३. निजानंद निजपदमां

निजानंद निजपदमां
निजरूप नीरखवामां,
निर्गुण निरुपम निर्विशेषमां
निर्मल निरामय निराकारमां
निजानंद निजपदमां
निजरूप नीरखवामां
वीतरागना निर्गंथ पंथमां
निजानंद निजरूपमां,
समकित सहज समाधि दशामां
निजानंद निजपदमां

२४४. देहमां स्थिति

देहमां स्थिति
विश्वमां गति
त्रिलोक गामिनी
विहरे छे चिति !

०

देह गेह
ने विश्व आंगणुं
सप्त लोक
पाडोश माहरुं

०

देह हिमगिरी
प्राण पंखीडां
इडा पिंगला
गंगा-यमुना.

०

सप्त धातु
छे सात समंदर
आलोक सप्त सर्जे
नारायण दशविध.

०

प्रणव निनादे
रोम रोममां
निनाद प्रसरे
नाडी सहस्रे

०

आसे श्वासे सत्य ग्रहुं,
निश्वासे आनंद झरे
श्वासोच्छ्वासे झूले
विलसे जगदंबा
संवित् शक्ति.

०

देह देहरी
प्राण प्रदीपो
आत्मराज
विग्रह विराटनो

०

पावन इन्द्रियग्रामे
पंच प्राणना राजमंदिरे
आद्य विराजे
स्वयंसिद्धि स्वयं तेजे

०

रूप विमल
ने नाम विमल
कर्म विमल
ने धर्म धवल
परिचय आछो
आ ज अमारो.

३४५. सत्‌ने सथवारे

सत्‌ने सथवारे
सत्‌ने अजवाळे
हाली हुं नीकळी
अनन्तनी यात्राअे ।।१।।
एकली अटूली
साव ज एकलवायी
हाली हुं नीकळी
अनन्तनी यात्राअे ।।२।।
वात न समझे
कोई म्हारी,
साथी ना संगाथी कोई
तोये सत्‌नी दीवानी
हाली हुं नीकळी
अनन्तनी यात्राअे ।।३।।
पहोंची ज्यारे
गेबी निवासे,
सरवाणी अमरितनी फूटी
हुं अंग अंग भींजाई ।।४।।
अमरितनुं झरणुं
फूटी नीकळ्युं
मंझिल राहीने गळी गई
विमल सत्यमय
सत्य विमलमय
इतिहासे हसीने
नोंध कीधी ।।५।।

२४६. हुं बुर्झवा छुं

हुं बुर्झवा छुं !
आपे सांभळ्युं ? हुं ऍरिस्टोक्रेट छुं !
केम के मारे श्वास लेवा माटे शुद्ध हवा जोईअे.
केम के मारे पीवा माटे शुद्ध पाणी जोईअे.
आपे सांभळ्युं ?
मारे स्नान करवा ओछामां ओछुं एक डोल
स्वच्छ पाणी जोईअे !
अरे, नाहवानी शुं वात करो छो,
मारे तो रोज कपडां धोवानी दुष्ट टेव छे
अने चार-छ कपडां धोवा माटे बे डोल पाणी तो
वापरवुं पडे ने ?
एटले रोजनी त्रण डोल पाणीनो खर्च करुं छुं !
अने हवे करुं जमवानी वात,
सवार-सांज एक एक कप दूध जोईअे
बपोरे काची काकडी, मूळी, गाजर के सिमला
मिर्च खावां जोईअे.
ते न होय तो दूधी-पालक-फणसी जेवां शाक,
मगफळी, वटाणा के चणा जोईअे
आ थई ने बुर्झवा जीवनशैली !
शुं पूछो छो - सूवा-ऊंघवानी वात ?
अरे, लाकडानी पाट अने पाथरवा-ओढवा
बे चोख्खी चादरो अने धाबळो खरो ने ?

रहेठाणनी वात पूछो ने ?
सीधीसादी झूंपडी होय के नानकडुं मकान
बे ओरडीनुं केम न होय
पण तेमां हवाउजास होवां जोईअे
थईने वळी ऍरिस्टोक्रसीनी वात !
भारतवर्षमां हवे नागरिकोने अन्न तो शुं
स्वच्छ पाणी मळवुं अघरुं थई गयुं छे.
स्वच्छ हवाउजास मळवां कठण थाय छे.
शाकभाजी मोंघादाट
पछी दूध-दहींनी वात ज केवी ?
लोकतंत्रमां लोक गंदा-अस्वच्छ !
लोकतंत्रमां लोक परतंत्र-पराधीन !
पछी तो जे लोको बे टंक जमी शके ते
बुर्झवा ज थया ने ?
जे लोको पासे नाहवाधोवाना पाणीनो पुरवठो
होय ते पेरासाइट्स थया ने ?
जे लोको पासे हवाउजासवाळी ओरडी
होय ते ऍरिस्टोक्रेट्स थया ने ?
एटले तो हुं कहुं छुं –
हुं बुर्झवा छुं !

२४७. काची कायानी मढुली

काची कायानी मढुली
मारा वालोजीए आपी मुंने रमवा
एने महेल मानीने हुं तो
जीवी गई हसतां रमतां... काची

मढुली फरते नानुं शुं आंगणुं
मजानुं मारुं मनडुं,
समजणना दीवा प्रगटाव्या
त्यां तो मढुली थई झळांहळां... काची

पडी जशे मढुली ने, ऊडी जशे हंसलो
रही जशे विमल जीवननी गाथा... काची

२४८. जीवन अमृतथी

जीवन अमृतथी छलकंता
आठ प्रहरना आठ पियाला
मानव अधरे रोज धरे छे
करुणाळु विश्वेश्वर भोळा
विरला पीवै अन्य ढोळी दे
नादानोनो आ जग मेळो
तोये चेते नहिं विश्वेश्वर
मानव अधरे रोज धरे छे
आठ प्रहरना आठ पियाला
दु:खीत हृदये विमल जुओ छे
मानवनी आ करुण कहानी
मानव तजतो नथी नादानी

तमे करो ते हुं करुं
भोळा ने भोट आपणे बेउ,
मुबारक हो आपणने –
भोळी करुणा, भोळी महोबत !

२४९. कटोकटी

कटोकटीनी वेळा आवी
आण देशनी जाळवजो
दीनानाथ दयाळु प्रभुजी
अणिनी घडीअे आवजो

२५०. कर्ममां रहुं

कर्ममां रहुं नित्य अप्रमत्त
वाणीमां रहुं सत्य संपृक्त
चित्तमां रहुं नित्य निर्ग्रन्थ
एवी शुभाशिष आपजो

२५१. काळनो ग्रास

काळनो ग्रास छे शरीर मानवी
काळनुं रमकडुं मानवी.
माने मननी वात जेह रहे कालवश तेह
देहपूजारी होय जेह कालाधीन ज तेह

o

आत्मा अजर अमर छे काळ अडे नहि जो.
मृत्युमांथी पसार थई अकाल वर्ते तेह.
माटे रहेजे आत्मरत, छोडी मननो छंद.
वर्ते आत्मार्थी थई तोडी भवनो फंद.

o

कषाय मननी कल्पना कषाय छे नहि सत्य
आत्मानी सत्ता बधे क्यांथी प्रवेशे असत्य.
माटे मोक्ष नथी अरे, प्राप्ति शानी थाय.
मोक्ष उपाय न संभवे, त्रिकाल सत्य सदाय.

o

अजाण रहेवुं स्वरूपथी, ते ज मोहनीय कर्म
अणसमजण पोते कषाय ज्ञानावरणीय कर्म.
समजण स्वरूप विषे थतां थाशे आत्म प्रतीत.
निजपदमां निजस्थिति थतां थवाय देहातीत.

-विमलचन्द्र

२५२. लगन लागी

लगन लागी
हुं तो
मगन भई
बिसर गई
हुं - मम - ने ।।

देह गेहमां
सकळ विश्वमां
बिन आतम के
दिसे न कांई ।।

हर पळ
हर स्थळ
विमल विलोके
प्रभुनी रम्य प्रभुताई

२५३. एकाकी विचरण

एकाकी विचरीए
विहरीए एकाकी
एकान्त सखा
शैशवना
आधार देत
प्रौढत्वे
वृद्धत्वे
आश्रय एनो.
एकान्त साचो
लोकान्त हतो
एकनो अन्त
प्रगट्युं जीवन समत्व
अहं निरसने
इदं जागे
इदम् 'अस्ति'नुं गान -
जीवन विमलनी शान.

२५४. अमे गेबी निवासना वासी

अमे गेबी निवासना वासी
नाम छे अमारुं सहजानंद
रूप छे अमारुं सहजानंद
सहजता अमारी चाल छे
आनंद अमारुं धाम छे

२५५. जीवनचक्र फरे छे

जीवनचक्र फरे छे
हुं स्थिर छुं
वाणी बोले छे
हुं मौन छुं
शरीर वृद्धावस्थामां प्रवेशी रह्युं छे
हुं चिरयौवन छुं.
देशमां अराजकता छे, कोलाहल छे
अंदर चित्तमां शांतिनो प्रसाद छे
ब्राह्मीस्थितिनो आल्हाद् छे
जीवन जीववानुं कर्म जीवनरसथी
तरबतर छे.

२५६. हवे जीववुं अेटले

हवे जीववुं एटले शुं
आ प्रश्न ज छे !
शरीर जीवे छे - पोतानी गतिअे !
तेनी गति निश्चित दिशाअे चाले छे
मृत्यु अे ज ते दिशा –
स्वस्थताथी डगला मंडाय छे.

o

मन गयुं नथी !
व्यक्तित्व ओगळी गयुं छे !
विश्व जीवे छे तेम ज
हवे आ देहनुं जीववुं !
जीववानुं स्वतंत्र कर्म शेष नथी.

o

कर्मोना संबंध हवे
कारण – कार्य – हेतु – प्रयोजन
एनाथी बिलकुल ज रह्यो नथी.
एटले कर्मनुं फळ संभवित नथी.
कर्मयोगथी नैष्कर्म्य अे ज होय
समाधिस्थ सहज जीवन अे ज होय.

o

''पोतानुं मरण
जोयुं आ आंखोथी
सुखनो आनंदानुभव
वर्णवाय नहि.''
मानवी जीवननी सार्थकता
दैवी अभिव्यक्तिनी धन्यता
शुं आ ज नहि होय ?

२५७. में तो वणी लीधा

में तो वणी लीधा श्रीहरिने
म्हारा अंग अंग प्रत्यंगे
सळवळे लोहीमां श्रीहरि
डोले श्वासे श्वासे हरि
नजरुंमां नूर श्रीहरिनो
हैये धडके पगरव हरिनो
वाणीमां पोते प्रकाशे
कर्मोनां ज्योत जलावे
ओगळी विमलने तेणे
आश्लेषी विश्वचैतन्ये

२५८. अपूर्व आव्यो अवसर

अपूर्व आव्यो अवसर,
विचर्या महत् पुरुषने पंथे रे.
विभाव सर्वे लोप्या,
बंधन संबंधोना तूट्या रे.
स्वस्थ थया ने विरम्या,
निजपद-निजरूप निजना द्रव्ये रे...अपूर्व

निजरूपे सहजता पांगरी
प्रगट्या चारित्र्य ज्ञान रे
कर्म निर्जरा थईने थंभी
आवन-जावन देहे रे... अपूर्व

२५९. सर्वाकार सर्वाधारे

सर्वाकार सर्वाधारे लूंटी लीधी मुने !
अवकाशमय आकाशे आरोगी लीधी छे मुने !
प्रेमना प्रकाशे ओगाळी नांखी अस्मिता !
हुं छुं आ कायामां के पेलो सर्वग्राही परमात्मा ?
वाणीमां कोण के शुं बोले छे ? आ बोल कोना छे ?
पेला वृक्षमां जीवन छे, आ कायामां जीवन छे !
महेके छे बन्ने जीवनना सौरभथी ! शोभे छे बन्ने जीवनना लावण्यथी !
कायानो अश्वत्थ जबरो ! बोलकणो पण खरो !
स्थावर छे ने जंगम पण ! ऊर्जानो अगाध सागर !
उल्लासने उछाळे, प्यार ने प्रवाहित करे; अमृतना मानो झरणा फूटे,
नजर पडे त्यां वालीडो ! आंख मींचुं त्यां कानुडो !
रसनी धारा लोहीमां भळी के लोही ज अमृत बन्युं ?
हवे मरणनी शी वले थशे ? कोने मारवा आवशे ?
मृत्युना नाटकमां देहना पडदा दूर सारीने कोण निर्गमन करशे ?
क्यां जशे ? आकाश तो हुं ज छुं ने ? अने तेज पण हुं ज !
मृत्यु मरी थयुं रे लोल ! अमृत थयुं अर्थहीन !

जयतुं जन्मं

जयतुं जीवनम् ! जयतुं मरणम्, जयतुं जयतुं जयतुं जीवनं !

२६०. जीवन मांहे जीवुं

हुं जीवन मांहे रे जीवुं.
नहि कोई विचार मुजने बांधे,
हुं जीवन मांहे रे जीवुं.
हुं जीवन संगे चालु
ना मने आदर्शो अवरोधे,
हुं जीवन मांहे रे जीवुं.
हुं जीवन मांहे रे प्राणुं,
ज्ञान मने नव ग्रहे,
हुं जीवन मांहे रे जीवुं.
हुं जीवन ताले रे नाचुं,
नहि काळ मने कवरावे,
हुं जीवन मांहे रे जीवुं.
हुं फूलडुं फोरुं रे जीवननुं,
त्यां द्वैत मने ना पहोंचे,
हुं जीवन मांहे रे जीवुं.
जीवन संगे रे एक थईने म्हालुं,
त्यां मृत्यु मने शुं मारे,
हुं जीवन मांहे रे जीवुं.

२६१. रक्त टपकती

रक्त टपकती सो सो झोळी
छोने आवे समर क्षेत्रथी
शीश आपवा सपूत अगणित
भारतमांना सपूत अगणित
शीश अर्पवा आवशे दोडी

२६२. पगरव गगने

पगरव गगने नव मानवनो
नवयुगने आपो वधामणा.
पूरब पश्चिम
स्नेह सभर थई
सेवे शमणां
सहजीवनना.
पगरव गगने नव मानवनो
नवयुगने आपो वधामणा.

२६३. आर नथी, पार नथी

आर नथी, पार नथी
सत् चित् समन्दर
घूघवे छे, जो ने सखी
बाहर ने अन्दर.
आ रे समन्दरमां
माछलडी मानवी
जनमे रमे विरमे
छटाओथी अवनवी.
आदि नथी, मध्य नथी
अन्त नथी रे कदी
रमनारा, जोनारा, रमत,
विमल शब्द सखी.

२६४. जवुं पडशे

जवुं पडशे
कोईक दिवस
मूकीने प्रिय जे
प्रियजन जे ।

देवतात्मा हिमगिरि
गहन विस्तीर्ण खीणो
प्रशान्त नील गगन
पंखीओनुं मधुर गान
जवुं पडशे मूकीने...

वृक्षो ऋषि समा प्राचीन
घेरो तेमनो लीलो वर्ण
झरणाओनुं शीतळ जळ
शान्तिनुं अमी प्रसन्न
जवुं पडशे मूकीने...

सरळ भोळा नरनारी
हिमालयनी लटकाळी बोली
हवा सुखद सौम्यतानी

२६५. नमन करुं

नमन करुं केम नमन करुं
कोने नमन करुं
जब मनडुं मारुं अमन थयुं
अमन थयुं रे चमन थयुं
जब मनडुं मारुं चमन थयुं.
गोकुळना गोंदरे रमती हती त्यारे
मनडुं मारुं पीगळी गयुं.
अंतर मारुं अमन थयुं.

२६६. जय जिनेन्द्र जय जिनेन्द्र

जय जिनेन्द्र जय जिनेन्द्र
जय जिनेन्द्र बोलो
जिन निर्देशित मारग पर
थई अनन्य चालो...
तन, मन, जिते ते जैन छे
आत्मार्थे देह गाळे ते जैन छे...
आत्मार्थे देह गाळी आत्मसिद्धि पामो...

२६७. खरी पड्या

खरी पड्या –
सबन्धो सघळां
ऋतु पानखरनी
छे शुं सुमंगला !
सुख संसारी –
गणे सोहयला
अनन्त दु:खो वेठीने पण !
मुक्ति मारग –
गणे दोहयला
सन्तोअे परमाण्या पछी पण !
पळे पळे उछळे –
हुं – म्हारुं
दंश जेहनो –
वचन कर्ममां !
वदे वचनथी वात कंईक
करे कर्मथी जुदुं ज कंईक
केम पालवे संग अमारो
पाखंडी मिथ्याचारीने ?
संग साथ छे बाह्य प्रदर्शन
अंतरथी छे वियोग नूतन
खरी पड्या –
सम्बन्धो सघळां
ऋतु पानखरनी
छे शुं सुमंगला !

२६८. श्रद्धा जीववी पडे

श्रद्धा जीववी पडे,
जीववानी हिलचालमां श्रद्धानो षडज् स्थायी
स्वर बनीने रणके छे, रणकवो जोईये
प्रभु प्रत्येनी श्रद्धा जीवन संगीतनो षडज् –
तो
मानव मात्र प्रत्येनो स्नेहादर तेनो रिषभ्
सम्बन्धोमां छलकती विनम्रता गंधार गणाय
तो
आत्मविश्वास नो हुंकार गौरववन्तो मध्यम कहेवाय
ब्रह्माण्ड साथेनी तदात्मता भाग्यशाळी पंचम
तो
सुख-दु:खोमां चित्तनुं समत्व ते धैवत गणाय
आत्मीयतानी अर्थात् प्रेमनी प्यास निषाद
बनीने मिठाश वेरे छे.
जीवन जीववुं एक महाकाव्य छे, संगीत छे
जीववाना कर्मो सूर बनीने म्हाले अने
कर्मोमां थिरकनारो संवाद लय पूरो पाडे
जीवन संगीत विश्वमां निदादे छे.
प्राणीमात्रमां तेना रणका संभळाय छे.
प्यारुं जीवन ! प्यारुं जीववुं !
प्यारुं छे हसवुं ने रडवुं !!

२६९. नवुं वर्ष

कहे छे के नवुं वर्ष आव्युं !
माणस जूनो रहे ने वर्ष नवुं केम बने ?
नवीननुं स्वागत करवां चित्त नवुं जोईए.
भूतकाळमां खूंचेलुं चित्त,
स्मृतिमां बंधायेलुं चित्त,
भविष्यनां सपनामां अटवायेलुं चित्त,
वर्तमानने जोवानी आंख क्यांथी लावे ?
प्रतिसादवा काजेनी हळवाश क्यांथी लावे ?
आपणे तो नवा वर्षने बे-चार दिवसोमां
भूतकाळना दबाण वडे कचडी नांखीशुं
आवेगो, आवेशो नीचे रगदोळी नांखीशुं
नवीन लावे छे अज्ञातना अणसार
आपणने अज्ञातनो भय सतावे
ज्ञातनो चिमटो लई अज्ञातना अणसारो
आपणे उपेक्षाना उकरडे फेंकी दईशुं
नवीननी नवीनता मचडी नांख्या पछी
'हाश' अनुभवशुं अने कहीशुं –
'अरे ! आने तो आपणे ओळखीए छीए'
आनी साथे व्यवहार करवानी कळा आपणे जाणीए छीए.

२७०. विचार अटकता नथी

विचार अटकता नथी.
विचार एटले संस्कारोनी गति.
विचारो ठांसी देवाने शिक्षण कहेवामां आवे छे.
तेमज
विचारोना संग्रहने विद्वत्ता गणवामां आवे छे.
विचारोना भरोसे जीववुं समाज-मान्य छे.
ध्यानमार्गी साधक विचार तथा ज्ञाननो आधार छोडी दे छे.
ते समजनो मार्ग पकडे छे अने तेनी किंमत चूकवे छे.
समज ज्यारे मस्तिष्कनुं सत्त्व बने छे त्यारे
अवधाननो उदय थाय छे.
एक तरफ मौनावस्थानो समयगाळो
वधारता जवुं तथा
बीजी बाजु समजना आधारे जीववानुं साहस
करवुं - आ बन्नेनो संयोग
ध्यानावस्थाना जागरण माटे
अनिवार्य छे.
बन्नेनी संयुक्त शक्ति आयामनुं परिवर्तन
घटित करे छे.

२७१. भारतनुं भावि

शुं आपणे ईच्छीअे छीअे के भारत कृषिप्रधा देश रहे ?

कृषि जीवे छे गोपालन, हाथशाळ अने गृहउद्योगोने आधारे.

कृषि आधारित जीवनमां महत्त्व रहे छे स्वाधीनता, स्वावलंबन, स्वाश्रयनुं.

जीवनमां प्रवृत्ति होय छे. धंधा, व्यवसाय के नोकरी होती नथी.

परस्परावलम्बन तो सामाजिकनुं सत्त्व गणाय. मैत्रीनुं हार्द गणाय.

शान्त, श्रमशील, निसर्गाधारित, लयबद्ध जीवनशैली खीली ऊठे छे.

कुदरतना खोळे, कुदरतनी साथे विनयथी जीववानी कळा विकसे छे.

भारत सरकारनी वर्तमान अर्थनीति कृषिप्रधान संस्कृति माटे घातक छे.

खेतीने धंधो बनावनारी, खेडूतने बाजारलक्षी बनावनारी विषाक्त नीति छे.

तेमां महत्त्व नफानुं; यंत्रोनुं; अंकोनुं रहेशे. मानवनुं नहि. जीवननुं नहि.

वैश्विक आर्थिक संबंधो मानवीय जीवननुं लक्ष्य न होई शके.

तेवा सम्बन्धो पराणे लादनारी नीति पराधीनता अने पराश्रयमां परिणमशे.

विज्ञान के यंत्रविज्ञानना सहज परिणामस्वरूपे वैश्विक सम्बन्ध पांगरशे.

अर्थतंत्रोना तोतिंग माळखाओमां जनजीवनने जकडवाथी नहि.

कृषि – ग्रामोद्योग – गोपालनथी मघमघनारा ग्रामो बचाववा छे ?

युरोप – अमेरिकामां तेवा गामो जवल्ले ज जोवा मळशे.

अमानवीय औद्योगिकरण, यंत्रीकरण, व्यापारीकरणनो शिकार मानव समाज

त्यां कृत्रिमता, स्नेहशून्यता, प्रक्षुब्ध भोगवादमां कणसी रह्यो छे.

शुं भारतीय विराट समाजने ते दिशामां धकेलवो छे ?

२७२. सत् – चित्तनुं अत्तर

सत् - चित्तनुं अत्तर
ते रामकृष्ण बुद्ध छे.
रामकृष्ण गांधी विनोबा
नवलां रूप छे.
मानवीनी चेतना ते
रंगीलुं पूमडुं
जेमां बोळाय तेना
रस रंग धारतुं
बोळशो विकारमां
तो आचरवुं अनर्थ छे.
सत् चित्तमां बोळशो
तो लीलीछम्म ल्हेर छे.
फावे न बोळता
तो जीववानो कलेश छे.
फावे जो भींजवता
तो अवसर अपूर्व छे.

२७३. सांभळोने साद म्हारो

सांभळोने साद म्हारो व्हालीडा भांडुओ
बेनीना हैयानो साद रे,
जागो ने ऊठो हवे थाओ रे साबदा
घडी अणीनी आवी बारणे.
जूनुं ते सोनुं, हतुं वांच्युं ने सांभळ्युं
जूनुं ते नीवड्युं कथीर रे.
जागो ने ऊठो हवे थाओ रे साबदा
घडी अणीनी आवी बारणे.

० ०ह्र ०

ऊठो ने दोडो तमे खेतरे ने खोरडे
बापुनी लई मशाल रे
जागो ने ऊठो हवे थाओ रे साबदा
घडी अणीनी आवी बारणे.

० ०ह्र ०

बापुनी वाणी ते गंगाना नीर छे
नीर जमनाना पावन रे -
ऊठो ने दोडो तमे खेतरे खोरडे
भींजवो धरती ने आभ रे.

२७४. धर्माचरण दुर्लभ थतुं जाय छे

धर्माचरण दुर्लभ थतुं जाय छे
धर्म एटले मानवधर्म.

सामाजिकता मानवधर्म गणाय,
असत्य, अन्याय, शोषण असामाजिकता कहेवाय.

समाजमां रहेवुं, नियति माटे धन कमाववुं, सगवडो भोगववी,
सुरक्षा मेळववी अने
ते समाजमां ज नागरिको साथे छळ कपट आचरवा
ए तो मानवतानो द्रोह करवा समान छे.

मनुष्यने मानव रहेवुं केम नथी गमतुं ?
विचारीने, समजीने जीववुं केम नथी गमतुं ?
संस्कारिता, सभ्यता, शालीनता नष्ट थता जाय छे.

पाणीनी प्रवाहिता नष्ट थाय
धरतीनी स्थिरता लुप्त थाय
दीपकनो प्रकाश अन्तर्धान थाय
शब्दनो नाद लोप थई जाय
तो जीवन अर्थहीन बनी जशे
तेम ज मानवदेहधारी मानवधर्मथी
च्युत थई जाय त्यारे समाज शब्द
अर्थहीनता पामे छे !

उन्मीलन

(मराठी कविता)

प्रथम आवृत्ति : रामनवमी, 1964 (संपादक : ईन्दुताई टिकेकर)

द्वितीय आवृत्ति : रामनवमी, 2014

कुल कविता : 49

श्रीकृष्ण

आ शी र्वा द

कोल्हापूर
ज्येष्ठ शुक्ल, तृतीया
शिवशक, २९०
शके, १८८६.

चि. विमलाताई,

आपल्याला आशीर्वाद देण्याची, वयाखेरीज आणि वेड्या आपुलकीखेरीज, माझी पात्रता नाहीं. केवळ त्या आपुलकीच्या अधिकारानेंच मी आपल्याला सस्नेह शुभाशीर्वाद देत आहे. आपलें सदैव मंगल असो.

आपला,

बाबा.*

* श्री भालजी पेंढारकर

निवेदन

उन्मीलनाला निवेदनाची आवश्यकताच काय ? साहित्यांत गम्य नसलेल्या एका जीवनाभिमुख व्यक्तिचें आप्तेष्टांशी हितगुज आहे या चिमुकल्या पुस्तिकेंत. उन्मीलनाची उद्‌भेदनात्मक घटना मौनाला मुखर बनविते. मुखरित मौनाचे हे वेडेवांकडे बोल मित्रांना आवडोत.

रामनवमी
१९६४

विमला

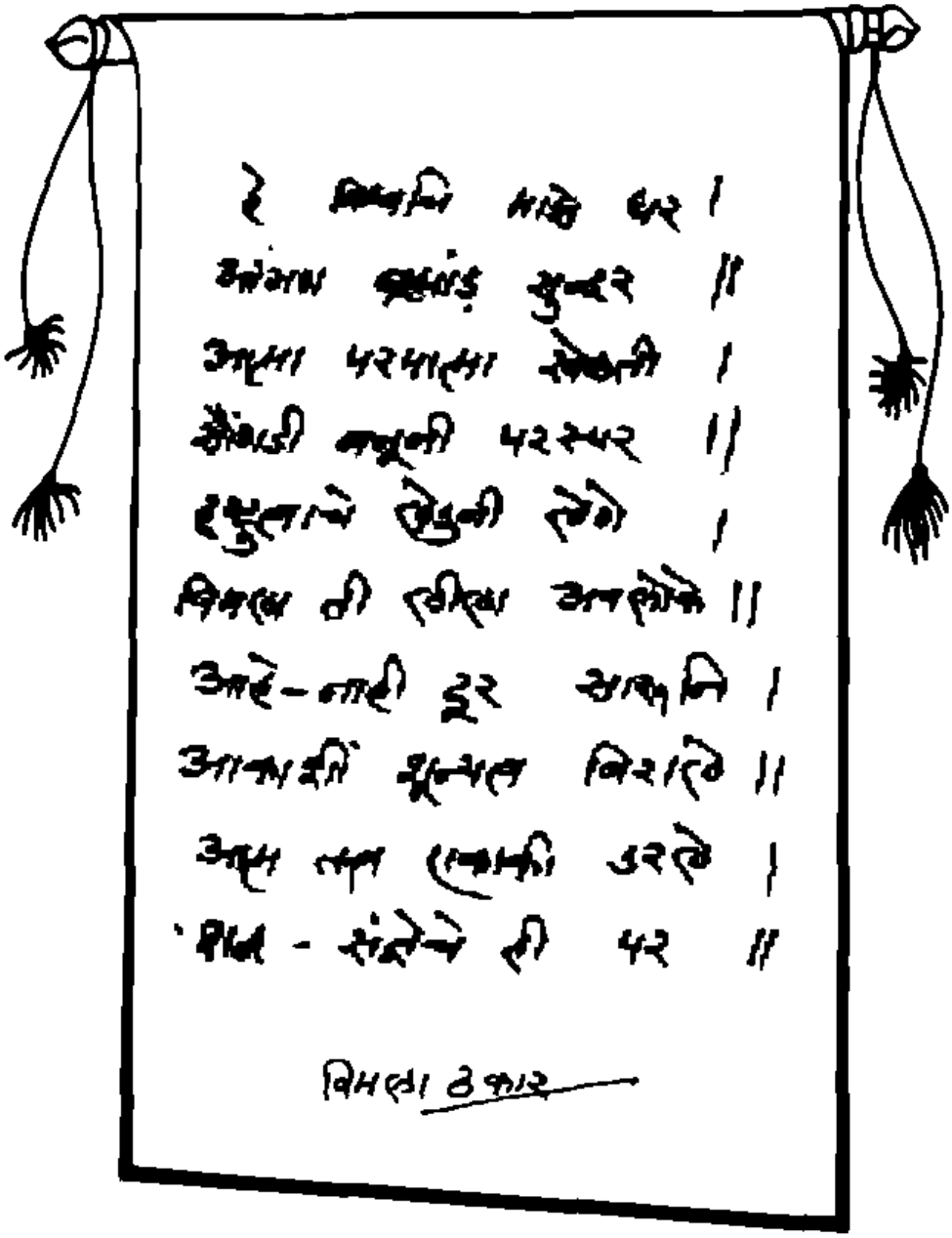

हे विश्वाचि माझे घर ।
ऐसा ब्रह्मांड सुन्दर ॥
आत्मा परमात्मा सोबती ।
जोडी जडूनी परस्पर ॥
हळुवाचे खेळुनी खेळे ।
विमल ती लीला अलोके ॥
आहे-नाही दूर आकाशि ।
आकाशीं शून्यत्व विराजे ॥
आत्म तत्व एकाकी उरले ।
'शिव - संतोषे ही पर ॥

विमला ठकार

२७५. नंदादीप

सत्य म्हणे कठोर नसावे.
मृदु असावे, प्रिय असावे.
सत्य कठोर असूं शकते हे मानायला आधार ?
पहाड फोडून झरा खळाळत येतो
पाणी कां कठोर म्हणायचे ?
इवल्याशा दिवलीची इवलीशी ज्योति
घनदाट अंधार भेदून जाते.
प्रकाशाला कां कठोर म्हणायचे ?
चिमण्या बाळाचं सोनेरी हंसणं
वज्राच्या कठिणतेला विरघळून टाकतं
त्या निष्कलंक स्मिताला कां कठोर म्हणायचे ?
सत्य कठोर असूं शक्तच नाहीं.
सत्याजवळ निर्घृणता - निष्ठुरता नाहीं.
अन् सत्याजवळ दया-माया पण नाहीं.
कठोरतेच्या कडोसरीला दया फुलते
निष्ठुरतेच्या सांवलीला माया पसरते.
सत्य म्हणजे प्रकाश.
सत्य म्हणजे प्रेमाचा पाजळलेला नंदादीप.

२७६. नवविध भ्रम

एकजात सारे सद्‌गुण भ्रमजन्य आहेत,
हृदयाच्या गहन गुहेंत अज्ञाताचं भय आहे
म्हणून माणसानं "**धैर्य**" निर्माण केलं.

चित्तांत अहंकाराचं भूत थैमान घालतं
म्हणून माणसानं "**नम्रता**" जागविली.

बुद्धि प्रभुत्वाच्या आकांक्षेने पेटून निघते
म्हणून मानव "**त्यागा**"चा महिमा गाऊं लागला.

हृदयांत कल्पना दु:खाचे जाळे विणते
म्हणून मानव "**वैराग्या**"ची थोरवी सांगूं लागला.

अंतरांत आनंदाच्या उद्रेकाची अभिलाषा लसलसते
म्हणून माणसानं "**संयमा**"चं ऐश्वर्य वर्णिलं.

बुद्धींत प्रामाण्याच्या वेडानं गोंधळ उडतो
म्हणून माणसानं "**श्रद्धे**"ची अनिवार्यता घोषिली.

मन विचाराच्या चौकटीचा आग्रह धरते
म्हणून मानव "**निष्ठे**"ची महती कथूं लागला.

बुद्धि जड-चेतनाचा भेद भासविते
म्हणून मानव "**अध्यात्मा**" चं तुणतुणं वाजवूं लागला.

स्वत:हून बंधनांचा चक्रव्यूह निर्माण केला नि
मानव "**मुक्ति**"च्या छायेमागे धांवूं लागला.

२७७. जो समरस झाला

अनुभूतीच्या साम्राज्यांत शब्द मावळतो
संज्ञा थिजते; संकेत विरून जातात.
शब्दाच्या मानगुटीं 'भूता' चे भूत असतें.
पाठीं पारंपरिक अर्थाचे ओझे असतें.
पोटीं संकेत व लक्षणा लपून असतात.
मुक्त शब्द –
विशुद्ध, निर्लेप नि सोंवळा शब्द अशक्यच.
आणखी एक मौज आहे.
शब्दांचा अर्थ प्रकट कोण करणार ?
अर्थाहून वेगळा वक्ता हवा ना ?
जो अर्थाचा साक्षीरूप असेल तोच –
निवेदन करूं शकेल कदाचित्.
पण साक्षी तर जगत नाहीं.
क्षणोक्षणीं अभिनव स्पंदनांतून सळसळणाऱ्या
जीवन लहरींचा आशय साक्षी सांगणार ?
स्थितप्रज्ञतेच्या कांठावर अलिप्ततेने –
बसून राहणाऱ्याला जीवनाचा अर्थ कळतो ?
आणि जो जीवनाशीं समरस झाला
त्यानें काय सांगावे ? कसे सांगावे ?
तो सांगायला उरतच नाहीं.
निरुपाधिक जीवनाची मौज सांगणें
त्या एका मौनालाच शक्य आहे.

२७८. चैतन्याचे साम्राज्यांत

'आज' म्हणजे या क्षणाचा विस्तार.
'उद्या' म्हणेजे कल्पनेने आरोपिलेला शृंगार.
'काल' म्हणजे स्मृतिने गौरविलेला शव–संभार.
खरं पाहतां–काल, आज नि उद्यां
ही सगळी मनाची माया.

हा अवघाच कल्पनेचा विलास.
निर्देशाच्या पकडींत नि संकेताच्या चिमटींत
जीवन सांपडणारच कसे ?
आहे आणि नाही च्या गवसणींत
जीवन गुंडाळले जाणारच कसे ?
क्षणाच्या कात्रीने काळाला कापून
त्याच्या चिंध्या कशा करतां येणार ?
म्हणून म्हणते-मनाची माया ओळखावी.
मनाच्या आकलनांत उन्मनाचा जन्म होतो.
चित्ताचे विलोपनांत चैतन्याचा विस्फोट होतो.
त्या अनवच्छिन्न, अनवरूद्ध –
चैतन्याचे साम्राज्यांत काळ लोपतो.
त्या सळसळत्या चेतनेच्या स्पर्शांत
अवकाश हंसत हंसत हारपतो.

२७९. संजीवनी

गर्द निळे आकाश
शुभ्र मेघांचा जरतारी शेला पांघरून
मोठ्या दिमाखाने बसले आहे.
लख्ख सोनेरी उन्हांत, सद्य:स्नात आकाश
केवढ्या गंमतीत हंसत आहे.
सिल्वर ओकच्या हिरव्याकंच फांद्यांमधून
चिमण्या किलबिलाट करताहेत.
खजूरीच्या उंच उंच झाडांवरून
काळतोंडी माकडे उगाचच किंचाळताहेत.
दूर कुठेतरी, कुणीतरी, पावा वाजवीत आहे.
त्याचे हळुवार सूर वाऱ्यावर तरंगताहेत.
पूर्वेकडचा डोंगरमाथा नाजुकशी जांभळी शाल
लेऊन ऐटीत उभा आहे.
त्या जांभळीची मादक आभा –
माझे चित्ताला धुंद करीत आहे
खोलींत जुईच्या हंसऱ्या फुलांचा
मंद सुगंध दरवळत आहे.
जीवनाचा प्रसाद कसा कोण जाणे
माझ्या सर्वांगांतून घमघमत आहे.
जीवनाची संजीवनी माझ्या दृष्टिंतून
ओसंडत आहे; स्पर्शांतून सळसळत आहे.

२८०. वारुणी

सुखदु:खाची दारुण वारुणी
अंजलिपात्र भरभरून मी प्यालें.
सुखासोबत दु:ख सहजच असते.
दु:ख जणूं सुखाची छायाच.
दु:खावेगळं सुख कुणी पाहिलंय ?
सुखाचं काल्कूट नि दु:खाचं हलाहल
अंजलिपात्र भरभरून मी प्यालें.
त्या घोर वारुणीचा कैफ मी पाहिला.
त्या गहन विषाच्या ज्वालेंत मी होरपळलें.

भले भले मला म्हणाले –
सुखावर संयमाचा उतारा घ्यावा
यति-संन्यासी सांगून गेले –
वैराग्यावांचून सुख पचायचें नाहीं.
साधु-संतांनीं बोध दिला –
दुखाला श्रद्धेचें अनुपान घ्यावें.
भक्त-भागवत कळवळून उद्गारले –
शरणागतीने दु:ख संहारावे.
धर्ममार्तंड आवर्जून सांगून गेले –
तितिक्षेच्या बळावर सारे सहन करावे.

मी नम्र जिज्ञासेने सर्व ऐकलें
पण मनोमनीं मला हंसूं फुटले.
मला सुखदु:खावर उतारा नको होता.
मला सुखदु:खापासून दूर पळायचे नव्हते.
मला सुखदु:खापासून संरक्षण अपेक्षित नव्हते.
मला सुखदु:खाचे अतीत जाणे अभिप्रेत नव्हते.
सुखांतून कुजबुजणाऱ्या नि दु:खांतून विव्हळणाऱ्या
जीवनाची मला ओढ होती.
त्याच्या साक्षात्काराची मला आर्त होती
सळसळत्या जीवनाच्या स्पर्शासाठीं -
मी सवर्गि आतुरले होते.

म्हणून सुखदु:खाचे मी स्वागत केले,
खुल्या दिलाने उभयतांना भेटले.
सुखाचा मद नि दु:खाचा कैफ चढूं दिला.
परंतु कैफांत हि जाणीव जागतीच राहिली.
जाणीवेच्या नि नेणीवेच्या पलीकडील जाणीव.
त्या जाणीवेच्या आलोकांत एक नवल घडले
सुखदु:खाचे बुरखे टाकून –
अनावृत जीवन समोर ठाकलें.
आम्ही कडकडून भेटलों.
त्या मिठींत दोघे हि लोपली.
मग ?
मग जे उरलें ते काय आहे ?
मला ते ठाऊक नाहीं.
त्याला आहे म्हणूं कीं नाहीं म्हणूं
याचे मला ज्ञान नाहीं.

२८१. पुढें काय ?

मन मुक्त झालें.
बुद्धि निर्मल झाली.
सावधानता साधली.
संवेदनशीलता उमलली.
पण त्यानंतर– पुढें काय

मुक्ती कां मुक्काम आहे –
कीं तेथें स्थिर होतां येईल ?
स्थिति व गति यांहून सर्वथा आगळी
मुक्ति म्हणजे निरपेक्ष जीवन.

निर्मळता कां जडता आहे –
कीं तेथें जीवन थबकेल ?
जडता व निष्क्रियता यांहून सर्वथा वेगळी
निर्मलता म्हणजे प्रांजळ-मोकळे-जीवन.
सावधानता कां शून्यता आहे–
कीं तेथें अभाव घेरेल ?

शून्यता व रिक्तता यांहून सर्वथा स्वतंत्र
सावधानता म्हणजे सहज स्वाधीन जीवन.
संवेदनशीलता कां बधिरता आहे –

कीं तेथें ठाण मांडतां येईल ?
बथ्थडता व बधिरता यांहून सर्वथा विभिन्न
संवेदनशीलता म्हणजे विशिष्ट जीवन.
म्हणून म्हणते – 'पुढें काय' चा अर्थ काय ?

पुंढें नाहीं नि मागें नाहीं.
आज नाहीं नि उद्यां नाहीं.
हवे नाहीं नि नको नाहीं.
विचारांचे जाळे नको.
भावनांचे जळमट नको.
कर्माची जाणीव नको.
अकर्माची हांव नको.
मित्र हो,
जगण्यांत जीवनाची परिपूर्ति आहे.
पाऊल उचलण्यांत यात्रेची फलश्रुति आहे.

२८२. एकाकी

आप्तकामाचा नीरव एकांत !
अभेद्य, अक्षोभ्य, अविचल !
जनसंमर्दाच्या घोर संपर्कांत
अविच्छिन्न समाधीचा एकांत !
अशा एकांताचा एकाकी प्रवासी
असतो-पथहीन, दिशाहीन, लक्ष्यहीन !
अशा एकाकीची जीवनयात्रा
असते - नि:शब्द, निगूढ, निरवधि !
एकाकी वेगळा नि एकटा वेगळा
एकटेपणांत संगतीची अभीप्सा लसलसते.
एकाकित्वांत जीवनाची पूर्णता झळझळते.
एकटेपणांत दुकट्याची प्रतीक्षा धुमसते.
एकाकित्वांत परिपूर्तिची ज्योति प्रज्वळते.
एकटेपणांत रितेपणाचे भूत भेडसावते.
एकाकित्वांत मौनाचे संगीत निनादते.

माझ्या जीवनयात्रेचा अर्थ –
म्हणूनच मित्रांना कळत नाहीं.

माझ्या जीवनयात्रेचा मार्ग –
म्हणूनच आप्तांना उमजत नाहीं.

माझ्या जीवनयापनाचा क्रम –
म्हणूनच सौगड्यांनाउलगडत नाहीं.

सोबत चलतां येत नाहीं सख्यांना –

म्हणूनच माझी 'संगत' त्यांना वाटत नाहीं.

माझे अयोनिसंभव शब्द कळत नाहीत -

म्हणूनच त्यांना 'संवादा' चे सुख लाभत नाहीं.

एकांतह्नएकाकी पथिकाची –

ही निर्हेतुक यात्रा अशीच चालणार.

२८३. उन्मीलन

मुकुलित जीवन आज उमललें
कसे, केधवां, मज न कळे.
सौरभ दाहीं दिशीं दरवळे
कसा लपवुं तो, मज न कळे.
लावण्याच्या उमटत ऊर्मी
कशा सांवरुं, मज न कळे.
आनंदाचा ओघ अनावर
कसा अडवुं तो, मज न कळे.
मौनाची उन्मुक्त स्वरावलि
कसे बांधुं तिज, मज न कळे.
अनवरुद्ध चैतन्य झळळत
रोधित होणें त्या न कळे.
उन्मीलित जीवन हे सुरभित
मुकुलित होणें त्या न कळे.

२८४. विशुद्ध जीवन

सकलां गतींची गति
जेथ प्रार्थे शरणागति
तियेची मोटकी आकृति
जाहलें मी स्वयंभावें ।।१।।

समयाचें भान माघारें
जेथ आपैसेचि सरे
तया अनंताची आकृति
जाहलें मी सहजभावें ।।२।।

सकळां जयाचें ध्यान
मूर्तांसि जयाचें भान
तया अमूर्ताची मूर्ति
जाहलें मी कीं निजभावें ।।३।।

शब्दमात्र जेथ मौनावे
परा नावेक स्थिरावे
तया नादब्रह्माची स्थिति
जाहलें मी अजाणतें ।।४।।

जीवन्मुक्ति जेथ पदर पसरे
निर्वाण देहुडीं ठाके
तथा विशुद्धाची स्थिति
जाहलें मी अनायासें ।।५।।

२८५. धांवुनि या

या रे या रे ।
कुणीतरी या रे ।
माझी हांक । कुणीतरी घ्या रे ।।ध्रु०।।

माझ्या हृदयीं, तुमचें आर्त ।
कथिन तुम्हां, जीविंची मात ।
मज साद । कुणीतरी द्या रे ।।१।।

चित्ताने ऐका,बुद्धिने देखा ।
अवधानें आलिंगन द्या रे।
माझी हांक । कुणीतरी घ्या रे ।।२।।

दिक्कालाचे द्वारीं, उभी ओठंगुनि ।
पालविते अवघ्यां, धांवुनि या रे ।
माझी हांक । कुणीतरी घ्या रे ।।३।।

२८६. उजळा ज्ञानदीप

उजळा ज्ञानदीप हृदयीं ।
तम जाळा शतशतकांचे ।।

भूतभाविचें तोडुनि अंतर ।
काजळी क्षाळा अंतरिची ।।

क्षणोक्षणीं जे उभे ठाकते ।
न्याहाळुनि घ्या तद्रूपातें ।।

कणांकणांतिल चैतन्याने ।
फुलुं द्या रोमावलि अवघी ।।

२८७. स्पंदित मौन

अनुरक्तीच्या कपोलींची आरक्ती ।

नि

विरक्तीच्या ललाटींची दीप्ति ।

माझ्या चित्त - चषकांत शिगोशिग भरली आहे

तीर्थक्षेत्रांच्या जलाची पावनता ।

नि

ऋषिमुनींच्या चित्ताची पावनता ।

माझ्या नेत्रद्वयांत आज नियळत आहे ।।

वेदोपनिषदांच्या शब्दांची उन्मुक्तता ।

नि

योगयोगेश्वरांच्या उन्मेषांची उत्स्फूर्तता ।

माझ्या हृदयाच्या कारंज्यांत ओतप्रोत आहे ।।

सूर्यचंद्राच्या किरणांची प्रभा ।

नि

भक्तभागवतांच्या करुणेची आभा ।

माझ्या रोमरोमांत ओसंडत आहे ।।

माझे 'मी' पण हरपले

नि

विश्वाचें निगूढ मौनच जणूं

या देहाद्वारें स्पंदित होत आहे ।

२८८. प्रेमशिखा

मावळले धर्म ।
पांगुळली नीति ।
निधर्मी, निर्नीत ।
जहालेसे हे जीवन ।।१।।

ओघळले मार्ग ।
विसावले पंथ ।
निर्मार्ग, निष्पंथ ।
वहातसे हे जीवन ।।२।।

स्थिरावला काल ।
दशदिशा हि निमाल्या ।
निष्काल, दिशातीत ।
चालतसे हे जीवन ।।३।।

आटले संस्कार ।
कर्तव्यें ही विरावली ।
प्रज्वळली प्रेमशिखा ।
धवळले हे जीवन ।।४।।

२८९. अमृताची धार

अमृताची धार
आज अंतरंगी लोटे
तियेच्या कल्लोळें
त्रिभुवन हे कोंदाटे ।।१।।

अनुभूतिच्या निर्झरीं
वाणी सर्वांगें भिजली
शब्दवसने फेडूनि
मुक्तमौनें ग वेढिली ।।२।।

दिक्कालाचे पैलतिरीं
दिव्य आनंद सोहळा
शब्दबन्ध तोडोनिया
प्राणसखा आलिंगिला ।।३।।

मृत्यूच्या अमृतें
मनप्राण ओथंबले
चित्त चैतन्यांत
विलोपुनी आनंदले ।।४।।

२९०. दिक्कालाचे पैल

दिवकालाचे पैल
अकालीं अनंतीं.
लागलेसे ध्यान
माझिया जिवाचे ।।१।।

अनंताचे गीत
शब्दस्वर हीन
निनादे अंतरीं
माझिया जिवाचे ।।२।।

जीवनें छेडिली
हृदयींची वीणा
झंकारले प्राण
माझिया जिवाचे ।।३।।

सहज सागरीं
लागली समाधि
तुटली सांखळी
आवागमनाची ।।४।।

२९१. मी खेळतसे

कुणि या मजपाशीं स्वानंदे ।
कुणि जा मजपासुनि सानंदें ।
मज त्याचें लव सुख-दुःख नसे ।
मी सहजानंदी खेळतसे ।।१।।

हृत्तंत्रीच्या जुळवुनि तारा ।
छेडियली मी जीवनवीणा ।
कुणि श्रवण कराया असे नसे ।
मी सहजानंदीं खेळतसे ।।२।।

शब्द गवाक्षें अभ्यंतरिची ।
स्नेहवशें उकलिली मोकळीं ।
कुणि दर्शन घ्याया असे नसे ।
मी सहजानंदीं खेळतसे ।।३।।

अमृत अद्वैताचें उधळित ।
अवघ्या प्रेमभरें आलिंगित ।
कुणि दर्दी दिलवर असे नसे ।
मी सहजानंदीं खेळतसे ।।४।।

२९२. धरती मातेच्या कुक्षीं

धरती मातेच्या कुक्षीं ।
खेळ अखंड चालतसे ।धृ।
कुणा धरीं आगमन ।
कुणा धरीं निर्गमन ।
हसणे रडणे परोपरीचे ।
खेळ अखंड चालतसे ।।१।।

कुणा घरीं स्वागत चाले ।
निरोप कोणा देत असे ।
एके द्वारीं अशोक पल्लव ।
अन्य द्वारी अश्रू तोरण ।
खेळ अखंड चालतसे ।।२।।

रंगमहालीं पाच महाभूतांच्या ।
अगणित नट-नटी अगणित पात्रे ।
अनादि नाटक चालतसे ।।३।।

पडद्याआडूनि कुणि चेतसे ।
नवी भूमिका भजवाया ।
भजवूनि कोणी रजा घेतसे ।
खेळ अखंड चालतसे ।।४।।

२९३. आत्मकृपा

आत्मकृपा झाली
वृत्ति पांगुळली ।
ठायींचि मुराली
माया अवघी ।।१।।

अरूपाचे रूप
सामावले नेत्रीं ।
नाम अनामाचे
रंगलेसे ओष्ठीं ।।२।।

विमल विलयनीं
उजळली उन्मनी
प्रगटली ब्रह्मदशा
अखण्ड समाधि ।।३।।

२९४. रामा तुझें नाम

रामा तुझें नाम ।
कन्हैया तुझे धाम ।
देत असे प्रेम ।
सर्वकाळ ।।१।।

राधे तुझी प्रीति ।
मीरे तुझी भक्ति ।
देई मज शक्ति ।
अपरंपार ।।२।।

२९५. विठ्ठलाचे नाम

विठ्ठलाचे नाम ।
– ते चि परम धाम ।
उठे ना उद्वेग ।
सुख दुःख भोगीं ।
घेतां मुखीं नाम ।
लोचनीं ये रूप ।
याचि विमलच्या देहीं ।
वैकुंठ – निवास ।

२९६. हे जगत नव्हे

हे जगत नव्हे ।
संगीत अनंताचे ।।१।।

ही नव्हे खचित ची माया ।
हे सगुण रूप ब्रह्माचे ।।२।।

बिन्दूतुनि ब्रह्माण्ड उगवले ।
नाद अनंत एक प्रणवातुनी ।।३।।

षड्ऋतु देती षड्रस आम्हा ।
नवविध भाव अष्ट प्रहरांतुनी ।।४।।

महाकाल देतसे ताल ।
क्षणांते लय-तोरण बांधुनी ।।५।।

शिव शक्तिचे मंगल नर्तन ।
सहज विमल जीवनी ।।६।।

२९७. नीर नयनींचे

नीर नयनींचे आटले –
हृदय करपले –
निष्ठुरता पाहुनी रातंदिनी
देखुनी बर्बरता दशदिशी

०

ही अशी कशी रे दशा
ईश प्रेमी भारत देशा

२९८. साठीं बुद्धि पाठी

साठीं बुद्धी पाठीं घाला ।
चला बुद्धीच्या पैल तीरा ।।

पैल तीरावरी उभा सांवळा ।
जनाबाईचा विठुराया ।।

निज देहासी पंढरी बनवा –
अहोरात्र हो दर्शन सोहळा ।।

२९९. हे जर्जर वृद्ध शरीर

हे जर्जर वृद्ध शरीर –
आतां माझें पंढरपुर ।

श्वसोच्छवासीं उमटे नाम –
जहाली काया विठ्ठलधाम ।

मितुले खावे, मितुले प्यावे –
मितुले अवघे चि दिनमान ।

येती जे जन भेटाया –
पहावा तेथें चि विठुराया ।

तेणें घडते तीरथगमन -
विमल ही बाह्योदशा तूं जाण ।

३००. हे विश्वचि माझे घर

हे विश्वचि माझे घर ।
आंगण ब्रह्मांड सुन्दर ।।

आत्मा परमात्मा खेळती ।
सौंगडी बनूनी परस्पर ।।

द्रष्टुत्वाचे लेडनी लेणे ।
विमला ती लीला अवलोके ।।

आहे-नाही दूर सारुनि ।
आकाशीं शून्यत्व विराले ।।

आत्म तत्त्व एकाकी उरले ।
शब्द-संज्ञेचे ही पर ।।

३०१. अव्यक्त सत्ता

अव्यक्त सत्ता-ती गंगोत्री
व्यक्त जगत् – ते गंगौघ पावन.
ऋषि सांगतात – दोन्ही पूर्ण असतात !
अव्यक्ताची आराधना – ती भक्ति.
व्यक्त मात्राची सेवा– ती पण भक्तिच !
अव्यक्तांतून अवतरण – तो जन्म !
व्यक्तांतून माघारे परतणे – ते मरण !
बंधनाचा शिरकाव कसा आणि कोठे होणार ?
मुक्तीच्या जयघोषाला अवकाश कसा आणि कोंठे ?
अवतरण सहज ! समावर्तन ही सहज !
सर्वव्यापी आकाशाला आलिंगन द्यावे !
रोमरोमीं अवकाश बनून शून्यत्व साधावे !
हे च निर्वाण !
हे च कैवल्य !
ही च ब्राह्मी स्थिति !

३०२. चित्त स्वस्थ

चित्त स्वस्थ
बुद्धि आत्मस्थ
काय म्हणुनी
सळवळते तरिही
व्यक्त होणे चे
आर्त अंतरीं !

०

करुणेचा अंतराय –
करीतो स्पंदायमान –
नि:स्पन्द आत्मतत्त्वासी ।

०

नाभिकमलीं नाद बिन्दू –
बह्मरन्ध्रीं अमृत सिन्धु –
रोम रोम भिजविती ।

०

शब्दांचे विहग फिरूनी –
शून्य गगनीं विहरती.
वैखरींत प्रतिबिंबित –
विमल विहग क्रीडा.

३०३. मरे एक

मरे एक, त्याचा दुजा शोक वाहे ।
अकस्मात् तो ही पुढे जात आहे ।
असे चक्र चाले जनम-मरणाचे ।
चालणार ऐसेचि समजूनी घ्यावे ।

०

अवसर जैं लाभे जगण्यासि बंधो –
उपेक्षू नये क्षण, जागते रहावे ।
यम धर्माचा ग्रास जीवन हे –
तथ्य विदारक हृदयीं ग्रहावे ।

०

अमृत कलश जणूं व्यक्त जगत हे ।
विषयांमधुनी अमृत झरते ।
अव्यक्त जगत् अमृत सागर ।
मौन घडविते त्याचे प्राशन ।

०

दिक्कालाचे पैल अनंताची सत्ता ।
ध्यान योगीयांची चिरंतन मत्ता ।
जन्म न तेथे, मरण न तेथे ।
अजर अमर केवल ते असणे ।

३०४. कर्तृत्व भोक्तृत्व

कर्तृत्व भोक्तृत्व निःशेष ।
द्रष्टुत्व विराले सविशेष ।
अमृत प्राशन श्वासे श्वासे ।
स्नेहसभर संतृप्तीचे ।

०

प्रारब्ध – शेष काया ।
काम काज त्याची छाया ।
संचित – संचालित माया ।
मृगजळ सम चळके राया ।

०

वर्तमान कर्पुर – अग्नि ।
क्षणमात्र प्रकाशित सुरभि ।
पांपणी लवतां उभय विसर्जित ।
धरा गगन सुरभित आलोकित ।

३०५. आज तुकाराम बीज

आज तुकाराम बीज आहे.

संत तुकाराम महाराष्ट्र संत संपदेचे एक उज्ज्वल रत्न होते.

निर्गुणाचे सार्थक ज्ञान आणि सगुणाची उत्कट भक्ती यांचा

सदेह अवतार-म्हणजे तुकाराम !

मुखीं नाम चित्तीं ध्यान - व्यवहारीं संन्यस्त जाण –

समर्थ रामदासांच्या संन्यासापेक्षा सर्वथा आगळा तुकारामाचा संन्यास

सन्त एकनाथांच्या प्रगल्भ गृहस्थाश्रमाहून वेगळा तुकारामाचा संसार.

सन्त ज्ञानेश्वरांचे दैवी प्रबोधन । तुकारामाचे मानवी उद्‌बोधन ।

दिसायला मातीतला माणूस । असायला गगनविहारी राजहंस !

मंबाजीला स्वत:च्या अभिजात क्षमाशीलतेने लाजविणारा महावीर.

तुकाराम गाथा अमोल शब्दरत्नाकर आहे !

भक्तसम्राट् तुकाराम !

३०६. एकनाथ षष्ठी

एकनाथ –
नाथ एक महाराष्ट्र देशीं –
लाभले रत्न मऱ्हाठीसी ।।

संशोधिली ज्ञानेश्वरी –
उघळिले परम-ज्ञान-वारि ।।

श्रद्धा जनता जनार्दनी –
जागविली भागवता रचुनी ।।

श्रीखंड्या बनले भगवन्त –
नाहले जगु ते गिरिजासुत ।।

रचिला पाया ज्ञानेश्वरे –
बांधिले मन्दिर एकनाथे ।।

गर्दभा पाजिले गंगाजळ –
केले अद्वैता उजवळ ।।

एकनाथ गिरिजाबाई –
दूजे विठ्ठल - रखुमाई ।।

विनम्र वन्दन करि विमल –
अमर हो नाथपंथ निर्मल ।।

३०७. हे कशी दुर्दशा

हे कशी दुर्दशा –
भारतदेशा -
कहर अराजकतेचा –
प्रशासन नसे –
प्रशासक नसे –
गोंधळ भोंदू नेत्यांचा –
प्रधानमंत्री काय करुँ शके ?
साथ नाही त्या कोणाचा ।

०

धर्मक्षेत्री अधर्म माजला –
पाखण्ड पराकोटिचे –
होते विदीर्ण अंतर माझे ।

०

कैवर्तक कधीं येणार ?
पांचजन्य निनादीत करणार ?
धर्म संस्थापन होणार ?
मम श्वासोच्छवासी व्याकुळता –
दिवसा – रात्रीं विव्हळता –
व्यथेत जगणे – व्यथेत मरणे
देउ न का विश्वेशा –
उद्धरा भारता ।
येउन सत्वरी जनतेच्या हृदेशा ।

३०८. हे प्रभो

नको अराजक; नको अशांति ।
सत्य अहिंसेची द्या शक्ति ।।

जनता जनार्दनाची भक्ति ।
साधु जनांची सहज संगति ।।

नको अराजक; नको अशांति ।

३०९. शब्द ओसरले

शब्द ओसरले
मौन जागले
मौन विराले
समाधि अवतरली
समाधि स्थिरावली
सहजता फुलली
आमोद सहज-योगाचा
आनंद विमल विश्वाचा

३१०. मनुज तनु धरुनिया

मनुज तनु धरुनिया
अहो हे महाशून्य प्रगटले
मानव रूपे ब्रह्मांड दुजे
सूक्ष्म कसे जाहले
ब्रह्मांड नव्हे-उर्जा उदधी –
अनंत उर्जा क्रीडा करती
उर्जा उदधी उसळे – रसळे –
चिन्मय रस नव नवे
नयनीं ओष्ठीं अमृत नितरे
नवल कसे वर्तले ।
अहो हे महाशून्य प्रगटले....

३११. शान्ति तेथे शक्ति

शान्ति तेथे शक्ति
शक्ति तेथे भक्ति
भक्ति तेथे आत्मरति
आत्मरतीचा आनंद
सुरभित करे आसमंत
सौरभ लाभो सर्वांना
विमला करते प्रार्थना

३१२. हो काया पंढरपुर

हो काया पंढरपुर
चित्त विठ्ठलाचे मंदिर
श्वासोच्छवासी विठ्ठल नाम
इहलोकी वैकुंठधाम

३१३. आम्ही ऱ्हातो पंढरपुरी

आम्ही रहातो पंढरपुरी
अमुचा निवास विठु-मंदिरी ।
सूर्य - चन्द्र श्वासोच्छवासी ।
भक्ति गंगा रुधिर-प्रवाही ।
नेत्रांचे नीरांजन –
दीप श्रद्धेचा पावन ।
कायिक कर्म पूजा – अर्चन ।
वाचिक शब्द प्रार्थना – स्तवन ।
स्निग्ध मौनाचे मर्दन ।
शान्तीचे अभ्यंग स्नान ।
प्रसन्नता भस्म चर्चित ।
अभ्यंतर चिर सुरभित ।
वैकुंठ करी अवतरण ।
जीवन विमलाचे धन्य धन्य ।

३१४. गोकुळ आमुचे ग्राम

गोकुळ अमुचे ग्राम । (गो = इंद्रिये)
गोपालन अमुचे काम ।
आमच्या घरी अकरा गाई । (एकादश इंद्रिये)
पांच चरण्या बाहेर जाती ।
दृष्टि, श्रुति, घ्राण, वाणी इत्यादि ।
संयमाचे सूत्रांत बांधूनि फिरताती ।
पांच घटाच्या आंत वावरती ।
मेधा, प्रज्ञा, स्मृति, चेतनाबाई ।
आत्मा करतो त्यांची रखवाली ।
असे आम्ही गोपालक ।
गोकुळ अमुचे ग्राम ।
गोपालन अमुचे काम ।।

३१५. देह झाले देवालय

देव देहींच संचला ।
अणु अणु पावन जाहला ।
रक्तांत आत्मतत्त्व –
श्वसनांत परमतत्त्व –
देहामाजीं देव मिसळला ।।

देह म्हणू कीं देव म्हणू –
कळत नाही मजला –
विमल म्हणू की विराट –
सखि कळत नाही मजला ।। देव देहीं...

चित्तासि आसन करूनि –
शेषशायी पहुडला ।
इहलोक म्हणावे –
अथवा वैकुंठ –
सखि कळत नाही मजला ।। देव देही –

३१६. सांग सखि

सांग सखि मज गुपित आपुले ।
कैसे हरिमय चित्त जाहले ।।

जीवन हरिसेवेचे साधन ।
वाणी करते हरिगुण कीर्तन ।।

दृष्टिसमोरी पदार्थ सृष्टि ।
करिते अविरत स्पंदन वृष्टि ।
क्षण पण चित्त न विचलित होते ।
कैसे हरिमय ....

नजर घुंद हरिरस मतवाली ।
झरते करुणा, वर्षत मैत्री ।।

वसुधेस करी स्नेह गंवसणी ।
पंचप्राणांची ओवाळणी ।
तव परिसरी अवचित जे आले ।
प्रेम प्राशुनी कृतार्थ जाहले ।।
सांग सखि....

३१७. ब्रह्मचि बनले

ब्रह्मचि बनले ब्रह्माण्ड ।
बनले देहचि हरिमन्दिर ।।

संचला विश्वीं विश्वेश्वर ।
कोंदला देहीं श्रीहरिवर ।।

द्वैताची दुरी संपली ।
मात भेदाची झोपली ।।

मृत्यु गान श्वासोच्छ्वास ।
जीवन जन्म-मरण महारास ।।

३१८. सहजानन्द

द्वैतबुद्धिइतकीच अद्वैतबुद्धि अनर्थकारिणी.
एकरस सृष्टिंत, द्वैतदृष्टि भेदाचे भूत जागविते.
जडचेतनाचा भेद कल्पून समरसतेला अडविते.
द्वैताने जागविलेले नि भक्तिने जोगविलेले,
भेदाचे भूत सत्य समजून,
अद्वैत एकतेचा सामवेद आळविते.
द्वैताद्वैताचे भ्रमात्मक जाळें उकलून
बुद्धि निर्भ्रान्त करावी
म्हणजे
अभ्यंतरीं सहजानंदाची पहांट फुटेल.

३१९. देहांत साम्य धातूंचे

देहांत साम्य धातूंचे ।
वाणीत तेज सत्याचे ।
चित्तांत साम्य वृत्तीचे ।
बुद्धीत स्थैर्य हिमगिरि चे ।
असे हे विमल जीवन – भक्तांचे ।।

३२०. माझे इवलेसे

माझे इवलेसे घरकुल
झाले मजसी पंढरपुर

हे हृदयची पंढरपुर
येथे वसती रुक्मिणीवर

श्वासोश्वासी घेता नाम
'विमल' वदनी विठ्ठलनाम
देहची झाले वैंकुठधाम

३२१. आतां जगणे म्हणजे

आतां जगणे म्हणजे काय
हा प्रश्नच आहे...!
शरीर जगतें – स्वत:च्या गतीनें !
त्याची गति निश्चित दिशेने चालते
मृत्यु हीच ती दिशा –
स्वस्थतेने पाउल पडत आहे.

०

मन राहिले नाही
व्यक्तित्व विरघळुन गेले !
विश्व जगते तसेच
आतां या देहाचे जगणे
जगण्याचे स्वतंत्र कर्म शेष नाहीं.

०

कर्माचा सम्बन्ध आतां
कारण-कार्य-हेतु प्रयोजन
यांच्याशी सुतराम् राहिला नाहीं;
म्हणुन कर्मांचे फळ संभवित नाहीं
कर्मयोगांतील नैष्कर्म्य हेच असावे
समाधिस्थ सहज जीवन हेच असावे.

३२२. आपुले मरण

आपुले मरण –
पाहिले म्यां डोळां
सुखाचा सोहळा
वर्णवेनां
मानवी जीवनाची सार्थकता
दैवी अभिव्यक्तिची धन्यता
हीच तर नसेल ?

शब्द अंतराय बनतात
पत्र कसे लिहावे ?
भेदभाव विरघळले
अभेद-गान कसे स्फुरावे ?
देह बनले सघन-शून्य
समाधि कोणाला लागावी ?

३२३. एकाकी विचरते

एकाकी विचरते –
विहरते मी एकाकी ।
एकान्त सखा शैशविचा –
आधार देत प्रौढवो ।।

एकमेव आश्रय त्याचा –
या मधुस्तंभ वृद्धत्वो ।
एकान्त खरा लोकान्त –
एका चा होई अंत ।
प्रगटे सर्वांगी समत्व –
विरसूनी अहं-ममत्वो ।।

इदम जागले विश्व लोपले
इदं अस्ति चे गान –
कीं जीवन विमल महान ।

३२४. शरीरस्थ असतांना

शरीरस्थ असतांना ज्ञान संभवते.
कारण ज्ञान शब्दांचे मार्फत होते.
शब्द नादात्मक असतो.
नादाची स्पंदने मस्तिष्क पकडते.
संस्कारानुरूप त्याचे अर्थघटन करते.

देहान्ताबरोबर मस्तिष्क नांवाचा
पार्थिव व अवयव संपतो.
म्हणून मरणांतर शब्दमय ज्ञान संभवत नाही.
चित्त संपते म्हणून अनुभव शक्य होत नाहीं.

देहात्मभावाचा अन्त होणे याला आत्मबोध म्हणतात.
स्वरूपाचे प्रथम शाब्दिक ज्ञान होते.
ध्यानदशेत प्रत्यक्ष स्पर्श होतो.
अर्थात् प्रतीति येते.
त्यामुळें देहभावाचा देहाध्यासाचा अन्त होतो.
त्याला म्हणतात जन्ममृत्युच्या फेऱ्यापून सुटणे.

"जन्म घेणे लागे वासनेच्या संगे
तेचि झाली आंगे हरि रूप"
अथवा झाली आत्मरूप.

मौनस्य निनादम्

(संस्कृत काव्यम्)

प्रथम आवृत्ति : रामनवमी, 2014

कुल कविताएँ : 26

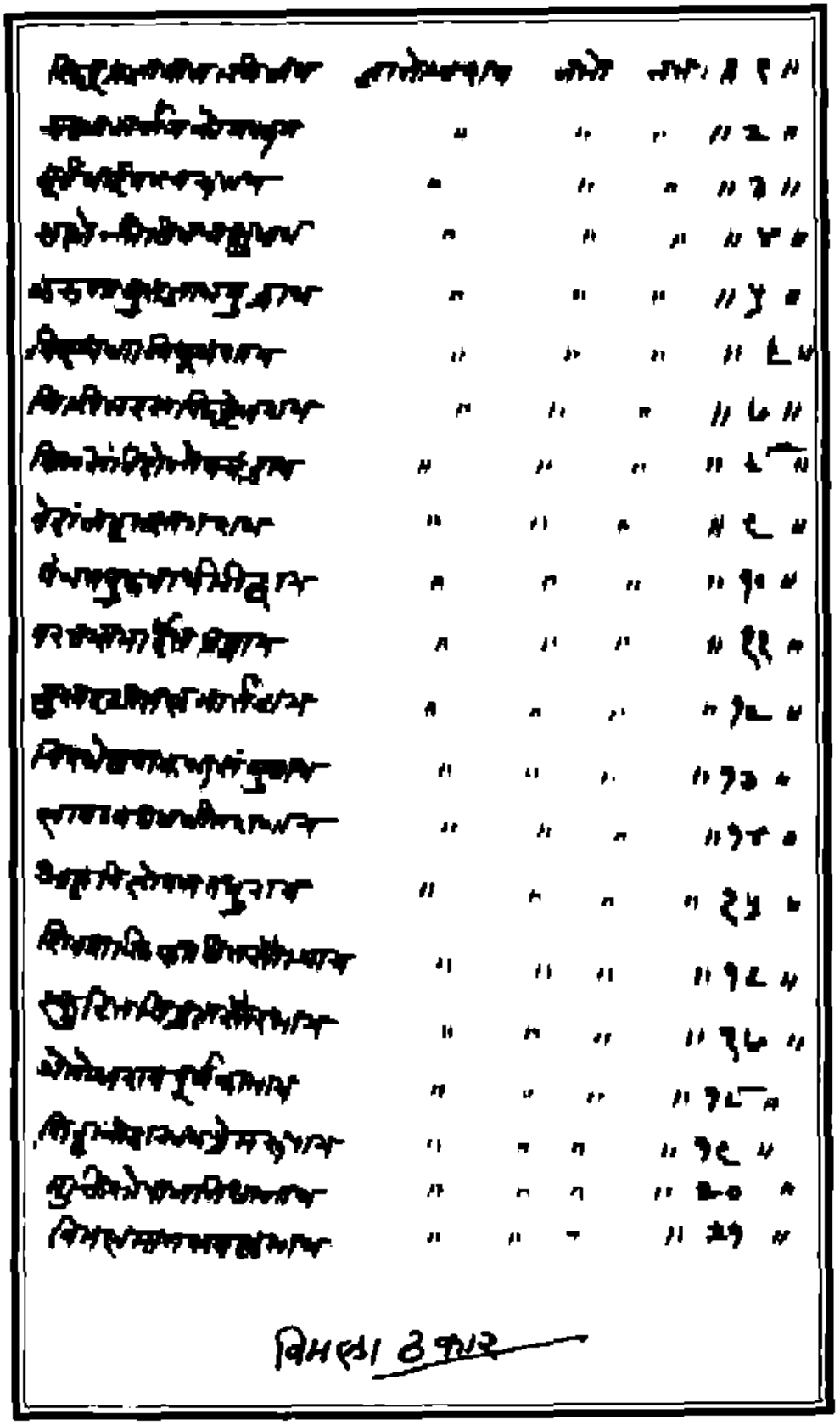

विमला ठाकर

३२५. श्री ज्ञानेश्वर प्रशस्ति

सिद्धप्रज्ञासनस्थिताय ज्ञानेश्वराय नमो नमः ।।१।।

सहजसर्वांगकोमलाय ज्ञानेश्वराय नमो नमः ।।२।।

मूर्तमार्दवस्वरूपाय ज्ञानेश्वराय नमो नमः ।।३।।

सत्योन्मीलितचक्षुषाय ज्ञानेश्वराय नमो नमः ।।४।।

करुणायुतज्ञानमुद्राय ज्ञानेश्वराय नमो नमः ।।५।।

विदग्धवाग्विभूषणाय ज्ञानेश्वराय नमो नमः ।।६।।

निखिलरससिद्धेश्वराय ज्ञानेश्वराय नमो नमः ।।७।।

विश्वसंविदोन्मेषचंद्राय ज्ञानेश्वराय नमो नमः ।।८।।

वेदान्तामृतसागराय ज्ञानेश्वराय नमो नमः ।।९।।

पंचमपुरुषार्थसिद्धाय ज्ञानेश्वराय नमो नमः ।।१०।।

परतत्त्वमार्दितप्रज्ञाय ज्ञानेश्वराय नमो नमः ।।११।।

सुखदशीतलमार्तंडाय ज्ञानेश्वराय नमो नमः ।।१२।।

चिरषोडशकलसंयुताय ज्ञानेश्वराय नमो नमः ।।१३।।

लावण्यधनवीतरागाय ज्ञानेश्वराय नमो नमः ।।१४।।

आत्मविलोपनमधुराय ज्ञानेश्वराय नमो नमः ।।१५।।

शिवशक्तिलालितसौम्याय ज्ञानेश्वराय नमो नमः ।।१६।।

स्फुटितचिद्लसौरभाय ज्ञानेश्वराय नमो नमः ।।१७।।

योगेश्वरायपूर्णकामाय ज्ञानेश्वराय नमो नमः ।।१८।।

निवृत्तिदासायप्रेमरूपाय ज्ञानेश्वराय नमो नमः ।।१९।।

मुक्तिसोपाननिधानाय ज्ञानेश्वराय नमो नमः ।।२०।।

विमलमानसवल्लभाय ज्ञानेश्वराय नमो नमः ।।२१।।

३२६. चिरनूतनाय

चिरनूतनाय नमो नमः ।
सनातनाय नमो नमः ।
शिवशाश्वताय नमो नमः ।
कालाय कालत्रयाय नमो नमः ।
प्रलय रूपाय सदा नमो नमः ।
विश्वाय विश्वरूपाय नमो नमः ।
निर्मलाय निराकाराय नमो नमः ।
विमलाय मलशोधकाय नमो नमः ।
सख्याय सख्ययोगाय नमो नमः ।
जीवनाय अमृतमयाय नमो नमः ।

३२७. प्रणिपातेन प्रतिप्रश्नेन

प्रणिपातेन प्रतिप्रश्नेन आत्मानुसंधानम्
आत्मानुसंधाने आत्मबोधम् ।
आत्मबोधे ब्रह्म रति
ब्रह्मरति इति ब्राह्मीस्थिति ।।

३२८. अध्यात्म विज्ञान समन्विताय

अध्यात्म विज्ञान समन्विताय ।
परतत्त्व-निरताय ऋषिप्रवराय ।
वेदज्ञ ब्रह्मज्ञ विनायकाय ।
प्रसन्नमुद्राय नमो नमस्ते ।।

०

निष्कामकर्म भक्तोत्तमाय ।
आत्मोपलब्धाय सारस्वताय ।
गीतारसज्ञाय गीतासुताय ।
प्रसन्नमुद्राय नमः नमस्ते ।।

०

साम्यसूत्र दर्शकाय ।
साम्ययोग निदर्शकाय च ।
लोकनीति पथप्रदर्शकाय ।
प्रसन्नमुद्राय नमः नमस्ते ।।

३२९. कृपा कटाक्ष कांक्षीणम्

कृपा कटाक्ष कांक्षीणम्
निगुढ भक्ति संयुतम् ।
देही त्वम् करावलंबं
सत्वरम् सदा शिवम् ।।

३३०. नादमूलं

नादमूलं विश्वं निखिलम् ।
आकाशः आवरणं आसनः ।
आकाशे सन्निहितं नादतत्त्वम् ।
तत्त्वं ऊर्जा-स्वरूपम् ।
तस्य प्राकट्यं संज्ञारूपे ।
नामे भवति निर्देशो नादस्य ।
रूपाकारं गृण्हाति तत्त्वऊर्जा ।
नामरूपात्मकं विश्वाकारं नादतत्त्वम् ।
तस्मात् नादमयं हि जगत् त्रयम् ।।

३३१. जगदम्ब अविलम्ब

जगदम्ब अविलम्ब आगच्छ त्वम् ।
निज प्रश्रयं देहि शरणागतम् ।।

स्वधर्मच्युतं निर्बलं भारतम् ।
करुणामयी देहि अभयं बलम् ।।

३३२. वेदज्ञं श्रुतिसारज्ञं

वेदज्ञं श्रुतिसारज्ञं ।
मंत्रज्ञ ऋषिवरश्रेष्ठ ।
श्री विनायकं मोहनात्मजं ।
वन्दे अभिनव महावीरं ।।१।।

सख्यधर्म उद्गातारं ।
साम्ययोग प्रवक्तारं ।
सदेह सर्वोदयमूर्तं ।
वन्दे अभिनव महावीरं ।।२।।

ब्राह्मी स्थिति - चिर प्रतिष्ठितं ।
ब्रह्मज्ञाने रत - चित्तं ।
परिव्राजिकश्रेष्ठ - विनायकं ।
वन्दे अभिनव श्रीशङ्करं ।।३।।

३३३. सत्यंवद, धर्मंचर

सत्यंवद, धर्मंचर
एष आदेश, एष उपदेश ।
चित्ते समत्वं एवं बुद्धये स्थैयम्
व्यवहारे संतुलनम्
इति साम्ययोगी व्यक्तित्वं ।।

३३४. बुद्धं शरणं -१

बुद्धं शरणं गच्छामि ।

अर्थात्

बुद्ध धर्मस्य वरणं करोमि ।

दु:ख निराकरणं = बुद्ध धर्म: ।

विषय-तृष्णा शमने क्लेशनिवृत्ति: ।

क्लेशान्ते दु:ख निराकरणम् ।

दु:ख निराकरणे मैत्री करुणा मुदिता, उदिता ।

चतुर्विध सत्यस्य आचरणात् बुद्धावस्था ।

त्वमेव बुद्धो भविष्यसि ।

सर्वजन हिताय समर्पितो भविस्यसि ।

बुद्धं शरणं – बुद्धस्य वरणम् –

बुद्ध धर्मो विजयते – करुणा धर्मो विजयते ।

३३५. बुद्धं शरणं -२

बुद्धं शरणं गच्छामि ।

अर्थात्

बुद्ध धम्म वरणं करोमि ।

दु:खस्य अन्त: = धर्मस्य हार्दम् ।

क्षणिक - विषय-तृष्णा-शमने दुखान्त: ।

उदयते चतुर्विध सत्यं - दु:ख निराकरणे ।

मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा । इति ।

चतुर्विध आर्य सत्यस्य आचरणात् बुद्धत्वम् ।

बुद्धत्वं = आर्य जनानाम् जन्मसिद्ध अधिकार: ।

विजयते बुद्ध धर्म: ।

विजयते करुणा धर्म: ।

मैत्री धर्मो विजयते ।

३३६. ब्रह्म निष्कल

ब्रह्म निष्कल ।

बिन्दु निःस्पन्द ।

नाद स्तब्ध ।

शब्द शान्त ।

हृदय वि-भूति-मत्वस्य ।

अस्त व्यक्ति-त्व-स्य ।

सत्ता एव अभिव्यक्ति ।

उपस्थिति एव उपलब्धि ।

३३७. त्वमेव विश्वस्य

त्वमेव विश्वस्य धाता विधाता ।

त्वमेव विश्वस्य परं निधानं ।

त्वमेव बीजं ब्रह्माण्डं त्वमेव ।

त्वमेव तत्त्वं भूतजातोऽपि त्वमेव ।

त्वमेव वाणी शब्द नादादि त्वमेव ।

त्वमेव सर्वं अहम् अपि त्वमेव ।

३३८. दःखम् मधुरं

दुःखम् मधुरं, सुखमपि मधुरं ।
जीवनमतिशय खलु रमणीयं ।।

दुःखे दिव्यं श्रीहरि स्मरणं ।
सौख्ये प्रभवति संयम शीलं ।।

नियति नियंत्रित निःसृत निखिलं ।
चिन्मय वैश्विक लय लालित्यं ।।

दुःखम् मधुरं, सुखमपि मधुरं ।।

३३९. श्री विवेकानन्दाय नमः

श्री विवेकानन्दाय नमः ।
रामकृष्ण सुताय नमो नमः ।
अभिनव शुकाय नमो नमः ।
प्रखर वैराग्य-मित्राय नमः ।
ज्ञान-भक्ति-कर्म समुच्चयाय नमः ।
वेद श्रुति रसज्ञाय नमो नमः ।
नरेन्द्राय सदेह नारायणाय नमः ।

३४०. मोक्षोपलब्धि

मोक्षोपलब्धि साध्यं ।

ईशोपलब्धि साध्यं ।

कषायोपशमनं एव उपायः ।

कषाय एव बन्धनं ।

रागद्वेषौ कषायं ।

उपशमनार्थे शुद्धिकरणं ।

शुद्धयर्थे { प्रमाद निरसनं ।
असत्य निराकरणं ।

अप्रमत्तयोगोपासना
अहिंसायोगोपासना } तदर्थे मौनसेवनं ।

मौन सेवने शून्यासने प्रतिष्ठा ।

शून्यप्रतिष्ठायां प्रज्ञाजागरणं ।

प्रज्ञाजागरणे वैश्विकी चेतना ।

वैश्विकचेतना जागरणे ध्यानावस्था ।

ध्याने प्रतिष्ठिते समाधि ।

समाधिजीवनं
समाधिमरणं } वीतरागपदं ।

३४१. हिमाचले, अविचलासने

हिमाचले, अविचलासने –
समाधिशीलं शिव आशुतोषम् ।
प्रणतवत्सलं करुणाकरम् ।
प्रार्थये अहं अहरह नित्यम् ।
पाहि भारतं, त्राहि भारतम् ।।
देहि बलं, देहि प्रज्ञाधनं ।
भारतं तेजरहितं मोहग्रस्तं ।।

३४२. अहो-निबिड यामिनी

अहो – निबिड यामिनी
निशा तमस धारिणी
क्रीडामयी एकाकिनी
मम प्रेममयी संगिनी
पश्य पश्य आगता – जाने न कुतः
हेम द्युति धारिणी –
गगन गामिनी -
रुद्र भामिनी –
क्रुद्ध स्वामिनी -
आयि चपलांगिनी –

३४३. सत्यम् प्रति ऋतम्

सत्यम् प्रति ऋतम् ।

शिवम् प्रति शुभम् ।

सुन्दरम् प्रति चारुतरम् ।

कोमलम् प्रति मार्दवम् ।

सुहृदम् प्रति सौहार्दम् ।

सखा प्रति सख्यम् ।

भ्राता प्रति भ्रातृत्वम् ।

ज्ञाता प्रति आर्जवम् ।

साधु प्रति लाघवम् ।

नारी प्रति दाक्षिण्यम् ।

शठम् प्रति शाठ्यम् ।

दीनम् प्रति दातृत्वम् ।

प्रारब्धम् प्रति पुरुषार्थम् ।

नियति प्रति सहिष्णुता ।

विबुध प्रति विनम्रता ।

कुटिल प्रति चातुर्यम् ।

उद्धत प्रति क्षमा ।

क्रोध प्रति शान्ति ।

कृपण प्रति औदार्यम् ।

३४४. वंदे प्रथमम्

वंदे प्रथमम् । आदिनादम् ।
वंदे प्रथमम् । मूलनादम् ।
आदिनादम् । ॐ कारम् ।
ॐ कारम् । परमेशम् । ....वंदे
निष्कल नादम् । बिन्दु स्वरूपम् ।
सकल नादम् । ब्रह्म स्वरूपम् । ....वंदे
स्वर-लय मंडित । रंजन शीलम् ।
राग-रागिणी । धृत कलेवरम् । ....वंदे
स्वीकुरु स्वीकुरु देव सनातन ।
सविनय अर्पित । विमल वन्दनम् । ....वंदे

३४५. नंदनंदन

नंदनंदन भवभय भंजन
विबुधजन रंजन श्याम हे... नंदननंदन.

यदुकुलभूषण वृज विभूषण
दयित जन रक्षण श्याम हे... नंदनंदन.

अमलवसन कमललोचन
दुःख मोचन श्याम हे... नंदनंदन.

३४६. पूर्णम् पूर्णातीतम्

पूर्णम् पूर्णातीतम् ।
रसिकवरम् तं रसेशं ।
विमल कमल नेत्रम् ।
विश्वनाथं नमामि ।
पूर्णम् पूर्णानन्दम् ।
रसानाम् रसम् तम् ।
विबुध विमल शीलम् ।
शंकरम् तम् नमामि ।।

३४७. प्रश्नक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे

प्रश्नक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवाः ।
सत्ताधीशाः सत्ताभिलाषाः च समवेता युयुत्सवाः ।
प्रशासकाः लोकनेताः च किम् अकुर्वत सेशन ।।

३४८. तृष्णा शमने

तृष्णाशमने वलेश मुक्ति ।
वलेश विसर्जने दु:ख निवृत्ति ।
दु:ख विसर्जनम् निर्वाणेति अभिधीयते ।
निर्वाण परायणो भव ।
निजधर्म उपासको भव ।।

३४९. मौनम् – रमणशीलम् ।

मौनम् – रमणशीलम् ।
सहजता – रमणविशिष्टता ।
निर्विकल्पता – रमणलाक्षणिकता
श्री रमणाय नमो नम: ।

३५०. शून्यता - शून्यावकाशे -

शून्यता - शून्यावकाशे -
आत्मज्ञान प्रागट्यम् ।
आत्म ज्ञान प्रागट्ये शांति संतोषम्
शांति संतोषे समाधिस्थ जीवनम् ।।

०

निर्विकल्प - निर्विकार चित्ते
नास्ति गमनागमनम् नास्ति जन्म-मरणम् ।
लगन ब्रह्मणे निर्विकार चित्तम्
निर्विकार चित्ते साक्षित्व जीवनम् ।।

३५१. यद् यद् करोमि कर्मम्

यद् यद् करोमि कर्मम्
तद् तद् तव आराधनम्
ते सर्व भवतु....

शंभु तव आराधनम्
सकल विश्व विभूतिमत्वम्
शंभु तव आराधनम्
घृष्णेश्वराय, गरुडेश्वराय, अचलेश्वराय,
केदारेश्वराय, उत्कंठेश्वराय....

मौनेर निनाद

(बांग्ला कविता)

प्रथम आवृत्ति : रामनवमी, 2014

कुल कविता : 3

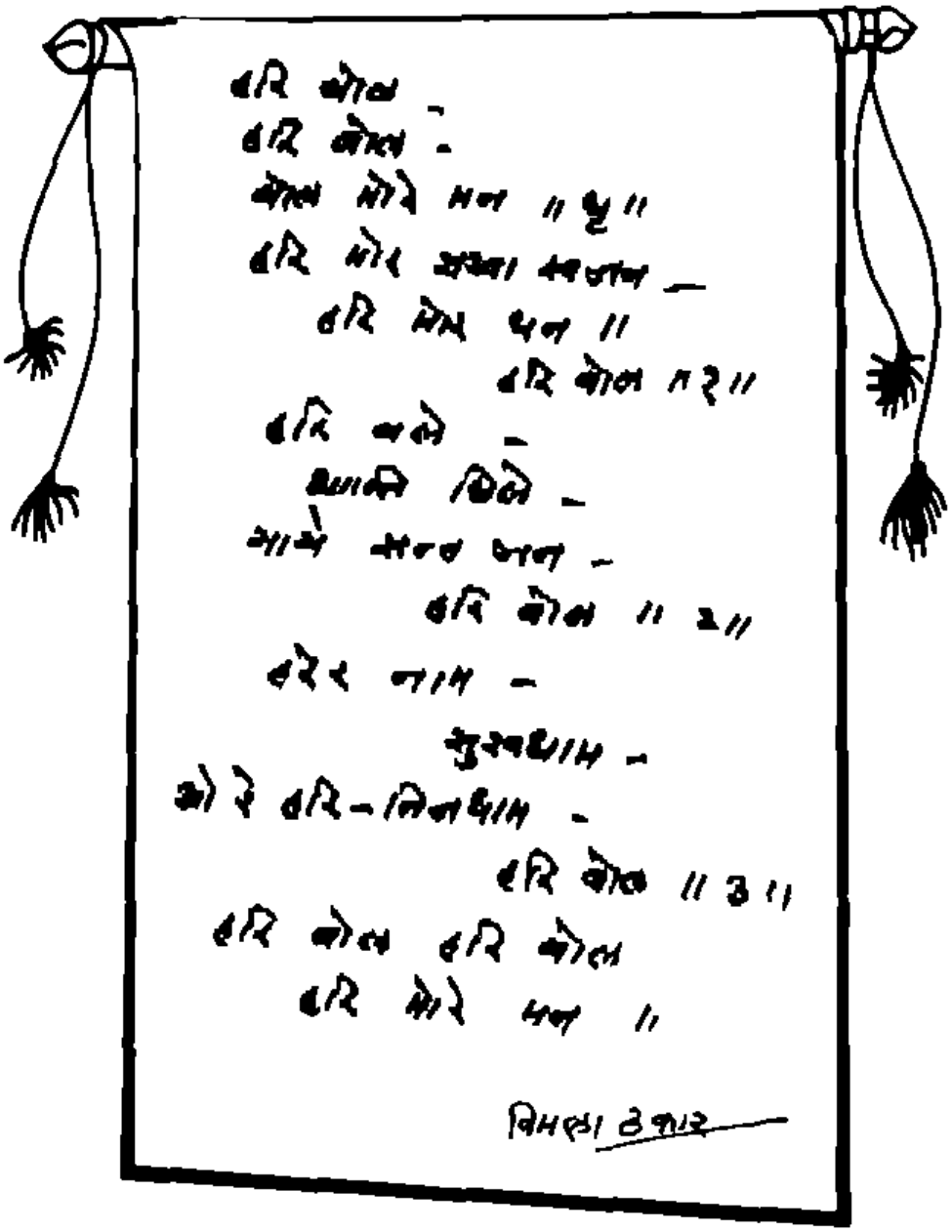

हरि बोल -
हरि बोल -
बोल मोरे मन ॥ धु ॥
हरि मोर अखा खजान -
हरि मोर धन ॥
हरि बोल ॥ १ ॥
हरि बले -
शान्ति मिले -
आमे सकल जान -
हरि बोल ॥ २ ॥
हरेर नाम -
सुखधाम -
ओरे हरि-निजधाम -
हरि बोल ॥ ३ ॥
हरि बोल हरि बोल
हरि मोरे मन ॥

विमला ठकार

३५२. आमार बुके ठाकुर

आमार बुके ठाकुर
शुदु तुमि छिलाम ।।धृ।।
ओ रे नयने आमार
शुदु रूप तोमार
प्रभु वदने आमार
एक नाम तोमार
आमार बुके ठाकुर...
आ जे काया आमार
ते कि विग्रह तोमार ?

३५३. शुभ लेन प्रभु

शुनि लेन प्रभु
आमार डाक तुमि
आमि जे तोमार
विमल-प्रेमी ।
शुनि लेन प्रभु ।।१।।

३५४. हरि बोल

हरि बोल –
हरि बोल –
बोल मोरे मन

हरि मोर सखा स्वजन –
हरि मोर धन ।।
हरि बोल ।।१।।

हरि बले –
शान्ति छिले –
गाये सन्त जन –
हरि बोल ।।२।।

हरेर नाम –
सुखधाम –
ओ रे हरि-निजधाम –
हरि बोल ।।३।।

हरि बोल हरि बोल
हरि मोरे मन ।।

Friendly Communion

(English poems)

Total Poems : 57

1. The Flame of Life
   (1962 : Publisher : Mrs. E.A.M. Frankna and Mr. Frankena, Holland)
2. The Eloquent Ecstasy
   (1963 : Publisher : Mrs. E.A.M. Frankna and Mr. Frankena, Holland)
3. Friendly Communion
   (1968 : Publisher : Mrs. E.A.M. Frankna and Mr. Frankena, Holland)
4. Friendly Communion
   (1982 : Publisher : Vimal Prakashan Trust - India)
5. Friendly Communion
   (1982 : Publisher : Vimal Prakashan Trust - India Edited by : Kaiser Irani)
6. In the Freedom of Silence
   (2002 : Publisher : Vimal Prakashan Trust - India
   Edited by : Arvind Desai, Geoagia Niesten (Duch Language))
7. Friendly Communion (Combined and enlarged Edition)
   (Ram Navami 2014, Publisher : Vimal Prakashan Trust - India
   Edited by : Shreyas Karia)

FOREWORD.

Life is an ecstacy to those who live. Ecstacy is a dynamic force. It unfolds itself in a thousand ways. Verbal expression happens to be one of them.

I am not a poet. I do not claim any poetic value to what has been written. I do claim, however, that these words are living. They are born of a direct union with life. Naturally they have a vital relevance to life. They have a relevance to life as it is. They have no relevance, whatsoever, to any theory about life.

Those who are earnestly interested in life, may find in this book a lovable companion.

Hilversum
26-11-1962

Vimala

A small book titled *'Friendly Communion'* containing verses was published in early sixties in Holland. These verses were written during 1961 and 1964.

One was reluctant to reprint it after the first edition was sold out. Life has moved away from the state in which the verses were born. Along with innocency there must have been ignorance about the English language.

These days there is a pressing demand for *'Friendly Communion'*. Hence it is being reprinted in India. One feels sure that the verses shall find their echoes in many simple and humble hearts.

Shivkuti,
MT. ABU

05-03-1982

Vimala

No age can claim me

I am passionately interested in life
Nothing can divert my attention from living
I am madly in love with Man.
No obstacles, no discriminations can hold me back.
I am consumed by the passion of freedom.
No class, no religion, can check my spontaneity.
Earth is my home, vast skies my abode.
No state, no nation can ever own me.
I am the perfume of cosmic evolution.
No age, no age, No night can claim me.

Vimala Thakar

355. RENUNCIATION

I have watched with interest
how I grew into maturity.
From ignorantly blissful girlhood
how I grew into womanhood.

I have watched likewise
how I grew into sanity.
From ignorantly blissful complexity
how I grew into simplicity.

When the spring of understanding
whispered the tunes of sanity.
The lotus of love blossomed
transforming every marrow of my being.

The perfume of understanding
was called simplicity.
The fragrance of simplicity
was called renunciation.

356. THE FLAME OF FREEDOM

I searched for Freedom –
in temples and churches,
God was there a prisoner –
in man-made cages.

I searched for Freedom –
in theology and philosophy,
Thought was there frozen,
in man-made phrases.

I searched for Freedom –
in revolution of every manner,
Mass was there worshipped,
Man was there murdered.

Thus my search failed –
but I had succeeded,
I had learnt through the wanderings
every effort was in vain.

I had learnt through the failures
every search was in vain.
I turned at last inwards –
to rest and relax.

And lo, the Flame of Freedom
was there ablaze;
Burning bright on –
the torch of Love.

357. WHO IS AFRAID

He needs a code of conduct
Who is afraid of his own self.

He needs a religion to save him
Who is afraid of Life vibrating.

He needs a God to protect him
Who is afraid of death overpowering.

He needs a Society to love him
Who is afraid of Solitude enveloping.

He needs a Virtue to purify him
Who is afraid of Passion's consuming.

358. BEYOND THE KNOWN

In the realm of known
Life is meaningless.
Everything is defined.
Everything classified

In the kingdom of known
Life is worthless.
Everything is gathered.
Everything is stored.

Beyond the realm of known
Life is full of romance.
Everything is to be discovered.
Everything to be lived newly.

Beyond the kingdom of known
Life is full of meaning.
Every breath reveals mysteries.
Every moment unfolds secrets.

359. SELF-DISCOVERY

Liberation is a matter of self-discovery
Let us find out what happens —
When Eye sees not forms without.
Let us watch silently what happens —
When Ear hears not sounds without.
Let us note what takes place
When Nose smells not scent without.
Let us observe what takes place
When Mind thinks not nor imagines.
Let us discover what then remains
When I is resolved into is-ness.
Let us abandon unto the Silence
And watch alertly what happens then.
Then perhaps it will dawn upon us
Reality is enveloped not in mystery
It is in the process of Self-discovery.

360. QUESTION YOURSELF

Have you ever stopped to question
Where from gets mind names and forms ?
What is a Name, what Form is ?
Where do Forms and Names exist ?
At the moment of perceptual communion
Is there a form you perceive ?
Does mind stealthily evoke a name
Out of the store-house of memory ?
And co-relate it to act of perception ?
Are names imposed upon the mind ?
Is it the content of our education ?
What has this identification done to us ?
Has it crippled our perceptual capacity ?
What happens when mind extricates itself ?
From the memory of forms and names ?
Does the mind still function then ?
What happens to time and space
In which mind is used to function ?
Can time sustain when memory is gone ?
What happens then to the I-ness ?
Is it the mirage of time-space illusion ?

361. THE SHADOW OF SILENCE

Speech is the shadow of Silence
Shadow has no substance of its own
Speech has no significance of its own.

Those who try to measure
A Substance by its shadow
Reach nowhere.

Those who try to measure
Silence by speech
Arrive nowhere.

Measure not by words
The depth of Silence.

Evaluate not by words
The content of Silence.

Judge not by words
The quality of Silence.
Speech is the shadow of Silence.

362. THE POISON OF THOUGHT

Beware of Verbalization,
Verbalization is a sting of the intellect
Intellect nourishes itself on Memory.

In the Soil of memory
Intellect throws the seed of word.
Concepts sprout and theories pop out
Like mushrooms in tropical rains.

They chain the mind to
The Kingdom of the known.
They pollute the mind
With thought's poison.

So, beware friends, beware,
Beware of Verbalization.

363. THE TRAP OF IDEATION

Ideation of the unkown
Is a terribly intricate trap
into which has fallen through centuries
Man, the seeker of Truth.
Faced with the suffocating fact
of his being caught in time
Man turned invariably to ideation
of the unknown; of God everlasting.
Thus he created vicious duality.
and himself become a victim
of conflicts growing out of duality.

Beware of this terrible trap
Friend, beware of this self-deception.
Any move in any direction –
away from the fact of life
is the root of untold delusions.
Be bold and be with the fact
that all action is born of the known.
And move not away from the fact
that mind is rooted in the known.
Turn not away from the fact
that mind is incapable of living otherwise.

And then –
You will see the miracle of miracles,
that mind is instantaneously silent.
Intelligence alert and awake,
is intensely vibrating with energy
and the mind is wound up of its own,
in its own majestic nothingness.
Understanding of the known
and freedom from the unknown
are but the names of the same.

364. ENERGY SMILE

From behind the blinds of duality

Life looks at me;

From behind the layers of matter

Energy smiles at me;

From behind the veil of destruction

Death beacons to me;

Solitude is flooded with Peace.

Silence is enriched with Bliss.

Aloneness is ablaze with Joy.

The purity of innocence is soaked in austerity.

Oh ! The beauty of It !

I is transmuted into It.

I is alight ! I is afire !

365. THE GREATEST ART

The discovery of the greastest art has occurred.

Meditation is the greatest art of life.

Meditation is a state of the entire being.

It is a state of limitless consciousness.

It is a dimension that is Love.

To live in Love is Meditation.

To live in Meditation is to move in silence.

To move in silence is to be awake.

An awakening without the need to sleep.

An awakening which inhales death - and exhales life.

366. THE ANCIENT TREE

Time is the ancient tree
with its roots deep in space.
Time is the ancient tree
with its branches in the future.
Time is the ancient tree
with its cool shade of memory.

Mind is a monkey ever restless,
jumping and hovering through time.
It jumps from thought to thought,
it clings languidly to memory.
The mind loves to play with time,
the mind loves to dance in space.

Unless we cut the roots of time,
the mind will never be quite.
Unless the mind is still and quite,
thinking shall never come to an end

367. BLESSED IS HE

Blessed is he,
who lives.
And fears not.

Blessed is he,
who loves.
And clings not.

Blessed is he,
who understands.
And knows not.

Blessed is he,
who experienes.
And retains not.

Blessed is he,
who is simple.
And complicates not.

Blessed is he,
who is free.
And binds not.

Blessed is he,
who dies.
And escapes not.

368. RARE MOMENTS

Our hearts are our battlegrounds.
Where wars are waged eternally.
Where conflicting desires bark incessantly.
Where contradictory ambitions dance violently.
Where gratification of one frustrates another.
Where victory for one defeats another.

Rare are the precious moments.
When we live in graceful ease.
when there is no tension in the heart.
When there is no conflict in the mind.
When action breathes in sacred freedom.
When action is its own fulfilment.

Those are the moments of love
In which there is complete union.
In which action and actor mingle into unity.
In which lover and beloved transcend duality.
In which all directions cease to be.
In which all purposes cease to be.

369. THE GAZE OF LOVE

Will you dare meet love -
If it happens to come your way ?
Will you dare meet its austere face
If it per chance turn to you ?

The austere face of love
shines with transparent humility.
Only the purity of innocence
can stand the gaze of love.

The all consuming gaze of love
melts all desire.
Only the passion of life
can stand the gaze of love.

The all destructive gaze of love
annihilates you completely.
Only the courage of truth
can stand the gaze of love.

370. HE DIES EVERY DAY

My brother is dead.
He was tall and slim.
He was strong and lean.
Charming was his smile.
Handsome was his face.
Refined was his bearing.
Gentle his manners.

Didst thou ask me – how ?
I canst tell thee –
If thou hast patience to listen.
He died in a war –
In a ghastly ugly war.
His plane was shot down.
It was shot by the enemies.

Didst thou ask me – which war ?
I canst tell thee –
If thou hast courage to listen.
He died in a war –
Which we had waged.
We wage wars within us –
Yes, thou and I wage wars.

We nourish ambitions.
We cherish jealousies.
We stimulate hatreds;
We cultivate enemities;
One day they explode –
We call it a war.
He died in such a war.

Didst thou ask me
who the enemy was ?
I canst tell thee –

If thou hast desire to listen.
Thou wast the enemy.
I was the enemy.
We are the enemy of our brothers.

We murder our brothers.
Dost thou listen to me ?
We murder every day.
Dost thou understand me ?
Our ego creates divisions.
It creates thine and mine.
Dost thou see, with me ?

Our ego creates ambition.
Our ego breeds vanity.
Our ego loves to possess.
We feed it on 'Gods'.
Our ego craves to dominate.
We feed it on 'Nations'.
Dost thou see, with me ?

We sharpen the swords.
We sharpen the spears.
We carry the guns.
We ride the tanks.
In the name of God.
In the name of Nation.
In the name of 'ism'.

And we slay our brothers.
Dost thou see it now ?
Thou hast killed my brother.
I have killed my brother.
My brother is dead.
We kill him every day.
Yes, my brother dies every day.

371. WHY SUFFER AT ALL ?

Why must we suffer in life ?
Why must we wail and moan ?

Let every thing pass by quietly.
Do not try to hold it on.
Do not cling to things and ideas.
Do not build a tomb of knowledge around you.

Let not attachment pollute your love.
Let not experience contaminate your mind.
Suffering is the shadow of ambition.
Suffering grows in the womb of Ego.

He is happy who arrests not time.
He is free who binds not life.
He lives who meets every challenge.
He loves who lives every moment.

Why must we suffer in life ?
Suffering vanishes in the movement of life.
Why must we wail and moan ?
Happiness vibrates in the movement of life.

372. I KNOCK AT EVERY HEART

They tell me in self-assured way
Liberation is the goal of human life.
They describe in self-confident notes
Various qualities of ultimate liberation.
Once you attain liberation, they say,
You are permanently in blissful happiness,
You are beyond pain and beyond pleasure,
Beyond sorrow, you are beyond joy,
No action is needed, nor any respite,
You become bliss, eternal, immortal.

I listen to them with humble patience.
Their words do make my heart sad.
Untold tears fill my eyes incessantly
For their words are empty as ashes.
Their words are echoes of thousand centuries.
They are vehicles of age old ideas.
Their words stink of callous isolation.
They smell stagnation of brain, of mind.
My heart weeps; it melts in compassion.
I knock at every heart, I tell them.

Feeedom is not utopia; it is a fact of life.
Freedom is not goal; it is a fact of life.
Permanent there is nothing, not even freedom.
Life is ever-new, ever-fresh, ever-changing.
Happiness is not beyond pain and pleasure.
It is pain; it is pleasure, it is joy and sorrow.
No bliss, no happiness, can isolate free mind.
It vibrates; it dances; it plays with life.
Freedom is alertness; it is dynamic awareness.
You are free; liberated; if you see it.

They look at me with wonder in their eyes.
They smile at me with surprise in their eyes.
We have read in the scriptures; they tell me.
We have been told by prophets, holy masters,
We believe it is true; we live according to them.
We'll control; we'll discipline; we'll master our mind.
Freedom is our goal; we'll get there one day.
Thus they close their hearts; their ears, their eyes.
My heart weeps; it melts in deep compassion.
I knock at every heart; I walk my way alone.

373. LIFE AS IT IS

Fear.
What is it ?
Identification with the known.

Memory.
What is it ?
Rumination of half-lived experiences.

Dreams.
What are they ?
Projections of self-centred thinking.

Emotions and sentiments.
What are they ?
Conditioned reflexes of an imprisoned mind.

Freedom.
What is it ?
Alert discrimination of truth and falsehood.

Love.
What is it ?
Spontaneous abandonment in relationships.

Ideas and ideals.
What are they ?
Respectable escapes from life and reality.

Enlightenment.
What is it ?
Dynamic awarness of all pervading life.

374. IN THE NET OF TIME

On a lovely bright morning
when space was lively
Ego, with the net of time
went out fishing slowly.
The net of time was spread
with the bait of past and future.
A lazy fish of careless thought
jumped foolishly into it.

Restless thought turned
hither and thither.
But out it could not get.
Slowly it died while ego smiled
in the beautiful net of time.
With the death of thought
time was dissolved.
And space did suddenly vanish.
Into that void ego was lost
and lost was the little mind.

The timeless breathed then
into spaceless nothingness.
The nameless played in immensity.
The timeless sang
the eternal song.
No words could measure its beauty.

375. PASSION

Passion is the plant,
that grows without roots,
Passion is the flame,
that burns without smoke.

Passion is the Sun,
without shine and shadow,
Passion is the day,
without night and morrow.

Passion is the love
beyond lover and his loving,
Passion is the ecstacy
beyond mind and its thinking.

Passion is passion,
no words can paint it,
Passion is passion,
no symbol can shape it.

Passion is life –
And life is passion;
If we but see the beauty
that death doth bring us.

376. THE NAKED EMPTINESS

Across the yonder valley
clear blue sky was yawning.
Down the velvety grass
gentle breeze was playing.
Dark green trees in rich fulness
were deep in meditation.
Tired pale Sun beyond the mountain-top
was withdrawing with hesitation.

My mind with a mischievous twinkle,
winked at me.
Brushing a graceful bow, it started
a game with me.
It first put aside grand robes
of knowledge.
It then threw aside lovely necklace
of emotions.

It tore away violently all likes
and dislikes.
It trampled over race, religion
and cast.
It shook asunder quickly
proud memory of past.
The mind had denuded itself
completely.

It was trembling like a leaf
I knew not what to do.
The mind dropped away singularly.
And there stood majestically,
In her pure nakedness
The queen of terrible beauty
The queen of impossible beauty
Total emptiness alive.

377. THE CROSS OF SORROW

I am nailed to the cross of Sorrow.
They are honoured thus
who dare love humanity.

The cross is not crude
nor made of wood.
It is subtle and fine
made of 'I' and 'Mine'.

The clouds of human suffering hang heavy
My eyes do droop and drowse under them.

The unshed tears of massacred innocence
Well up and fill the heart to the brim.

The undreamt dreams of slaughtered youth
Darken the tearsoaked eyelashes.

The unfullilled passion of widowed womanhood
Scorch and simmer the trembling heart.

The strangled sobs of orphaned infancy
Stille and choke the withering breath.

I am nailed to the cross of Sorrow.
They are honoured thus
who dare love humanity.

378. SING WITH ME

Love enters the human heart
as does the morning dew
descend upon the mother earth.
Love invades the human heart
as does the spring of youth
tinkle every drop of blood.

Since love has visited me
solitude reigns over my life.
Ceaseless events pass through me
without leaving scars of memory.
Joy and sorrow play endlessly
without touching the inner core.

The purity of serene harmony
sings soundlessly through silence.
The music of silent ecstasy
throbs noiselessly within me.
Would any one care to listen ?
Would any one come, sing with me ?

379. MY PLAYMATE

Do not disturb me

I am playing with death.

I gave him my consciousness;

he gave me silence in return.

I gave him the pearls of thought;

He gave me limitless awareness.

I gave him the indomitable ego;

He gave me humility of Love.

Do not disturb me

I am playing with death.

I gave him the trinity of time;

He gave me everfresh eternity.

I am busy emptying myself for him;

He is busy renewing life into me.

Death is my old playmate;

And thus we play...together.

380. MY BELOVED

I shall sing today.
As sings a skylark,
High above the earth.

I shall sing today.
As sings a cuckoo,
When the spring smiles.

I shall sing today.
A song of love,
For my heart is full.

Life my only beloved
holds me in embrace.
We are united today.

My beloved's every smile
pours freshness into me.
Life-my sweet beloved.

My beloved's every kiss
breathes Newness into me.
Life – my charming beloved.

381. THE BEAUTY OF NOTHINGNESS

There happened a marvel,
In between two thoughts
The austere beauty of
Sheer nothingness Shone.

Its dynamic Silence
Suddenly emptied the
Whole Consciousness.

Only a flood
of passion prevails
And pervades profoundly
The remaining chaste 'IS-ness'.

382. EMPTY AS SPACE

I am

Empty as space.

Who can grasp me ?

I am

Vast as skies.

Who can bind me ?

I am

Deep as oceans.

Who can fathom me ?

I am

Strong as earth.

Who can fight me ?

I am

Bright as Sun.

Who can hide me ?

I am

Fearless as death.

Who can ignore me ?

383. I AM WITH YOU

I am that rocky mountain
smiling silently upon you.

I am those dark green trees
waving arms of love at you.

I am those soft meadows
inviting the lover in you.

I am the crystal clear river
pouring out my being to you.

I am the fresh mountain air
whispering the song of love to you.

I am the glorious full moon
embracing you with thousand arms

I am the love unquenchable.
I am with you in thousand forms.

384. THE RHYTHM OF LIFE

I live in life.
Ideas cannot hold me.

I move with life.
Ideals cannot contain me.

I breathe in life.
Knowledge cannot arrest me.

I am the rhythm of life.
Time cannot bind me.

I am the perfume of life.
Duality cannot catch me.

I am one with life.
Death cannot kill me.

385. THE LIFE UNIVERSAL

I am neither man nor woman
I am the life breathing through both.

I am neither matter nor spirit
I am the life pulsating in both.

I am neither birth nor death
I am the life living through both.

I am neither truth nor falsehood.
I am the life behind them both.

I am neither light nor darkness
I am the life dancing through both.

I am neither time nor space
I am the life playing with them both.

I am here, there, everywhere,
I am the life universal.

386. NO AGE CAN CLAIM ME

I am passionately interested in Life.
Nothing can divert my attention from living

I am madly in love with Man.
No distinctions, discriminations, can hold me back.

I am consumed by the passion of Freedom.
No ethics, no religion, can check my spontaneity.

Earth is my home, vast skies my abode.
No state, no nation can ever own me.

I am the perfume of cosmic evolution.
No thought, no race, no age can claim me.

387. EVERYTHING IS CHANGED

Everything is changed within me.
Everything is changed around me.

Gone is the burden of years.
Gone is the weight of knowledge.

No more any tension of I-ness.
No more any strain of self- ness.

Truth has invaded me suddenly.
Love has overpowered me suddenly.

Reality has recreated me silently.
Beauty has reshaped me inwardly.

Quietitude has captured me unawares.
Beatitude has captured me unawares.

Fresh as the morning dew - I am.
Free as the mountain air - I am.

Smile of the sleeping child - I am.
Scent of an anonymous flower - I am.

Vastness of the unlimited skies - I am.
Fullness of the unfathomable oceans - I am.

388. LET ME CARRY IT

Oh ! friend
Why do you tell me
that nobody listens to my words.
The brutal indifference of the people
is my holy cross.
Let me carry it patiently.

Oh ! friend
Why do you tell me
that they laugh and jeer at me.
The contempt of the worldly wise
is my sacred cross.
Let me carry it quietly.

Oh ! friend
Why do you tell me
that they doubt my integrity.
The scepticism of the learned scholars
is my precious cross.
Let me carry it silently.

389. LIFE RAISED ME

I was sitting at the window of my mind –
musing silently about life.

I am petty, I am shallow, I sighed thoughtfully –
I shall never see the light of life.

I am jealous, I am envious, I sighed mournfully –
I shall never see the light of life.

I am vain, I am proud, I wailed sorrowfully –
I shall never see the light of life.

While I was thus musing deeply, a beam of light –
smilingly peeped through the window.

It pierced through me, it lighted up my being –
The light of life had come.

The light of life with its flame of love –
pushed back the darkness of ages.

Gone was the musing and gone meditating –
Gone were the tears of sorrow.

The light of life had chosen me –
It came. It blessed. It raised me.

390. THE PATHLESS WAY

While I walk on my way
I am quite alone today.
My way is pathless and new
None has walked on it before.
For it was born with me
For it has grown with me.

I walk alone on the way
The way is my only companion.
My silent companion encourages not
nor does he ever discourage me.
His affection and warmth of heart
is felt only by my bleeding feet.

I have not yet arrived
for my way seems endless.
It runs winding ahead of me
but, lo and behold, behind me,
there are no traces of footmarks
and none whatsoever of the way.

391. THE FOUNTAIN OF LIFE

I have drunk deep
at the fountain of Life –
I am no more thirsty.

I have tasted enough
the nectar of life –
I am no more hungry.

Time has whispered softly
the song of the timeless –
I am no more weary.

Life has unfolded gently
the mystery of death –
I am no more scary.

Love has kindled up
every corner of the earth –
I am no more lonely.

392. ATTIRE OF NOTHINGNESS

Woven in transparent humility
is my attire of blissful nothingness.
Clad innocently in denudity
I walk upon this earth.

Composed in reposeful quietitude
is my song of exuberant silence.
Singing innocently in bealitude
I walk upon this earth.

Extended in respectful affection.
is my hand of warm friendship.
Overflowing with innocent spontaneity
I walk upon this earth.

393. AN UNSOILED LIGHT

A light unsoiled by darkness
is melting the whole IS-ness,
An awakening untouched by sleep
is vibrating the entire Consciousness.

A communion unpolluted by duality
is throbbing through the eternal present,
A love uncontaminated by I-ness
is energizing the total being.

A life undetected by birth and death
is smiling through deep eloquent Silence.

394. ENOUGH OF IT

Come with me,
Do not follow me.
You have followed many for centuries.
I say – enough of this childishness.

Listen to me,
Do not repeat my words.
You have repeated words for centuries.
I say – enough of this repetition.

Understand me,
Do not adore me.
You have adored many for centuries.
I say – enough of this infantile adoration.

Love me,
Do not worship me.
You have worshipped holy persons for centuries.
I say – enough of this immature authorization.

Embrace me,
Do not bend and kneel.
You have bent down and knelt for centuries.
I say – enough of this self-humiliation.

Befriend me,
Do not condemn me as an authority.
You have condemned enlightened ones for centuries.
I Say – enough of this callous condemnation.

395. BEYOND ALL FRONTIERS

Will you come with me
across all the frontiers
to a brave new world
which knows not frontiers ?

Will you break with me
heavy doors of our prisons
which are built in the name of security,
Which are guarded by the myth of society ?

Will you shatter with me
ancient walls of morality
which want to shape our minds,
which crave to cripple our lives ?

Will you burn with me
all scriptures and authority
which stifle human reason,
which throttle holy passion ?

Will you jump with me
into dark deep unknown
where time flutters not,
nor space envelop us ?

Will you open with me
invisible gates of free world
where mind limits not,
nor memory binds us ?

Will you come with me
to the land of eternity
which lies beyond all frontiers,
Which lies beyond life and death ?

396. SILENCE IS SHY

Silence is very shy.
She hides herself far away –
in the depth of human heart.
Thought cannot reach her.
Emotion cannot touch her.

Silence is very shy.
She eludes devilish time.
She evades cunning memory.
She is beyond human search.
She is beyond imagination.

Silence is very shy.
She will never open up –
if you demand it of her.
She will never blossom out –
if you command it of her.

Yes – Silence is very shy.
She smiles on those who love her;
She speaks to those who wait on her.

Silence is very shy,
She is eloquent –
when mind speaks not.
She is yours –
when you are not.
Yes - Silence is very shy.

397. THE CALL OF LOVE

Awaken ! Arise !

Oh ! ye indolent ones –

Awaken ! Awaken !

From the deep slumber of ignorance.

Yonder hails the Beloved

And Yonder rings so clear

The long awaited call of Love.

Come, says he, Oh ! come

My darling ones –

Come and rest your tired souls

In the gentle arms of Love.

Come, says he, Oh ! come

My lost ones –

Come gently

Across the valley of words –

Jump swiftly

Across the stream of thoughts –

Let me show you – please – let me,

The land of eternal Love.

Come, says he, Oh ! come –

My silly ones –

Don't play with knowledge –

Nor play with the mischievous mind.

Let me take you – please – let me,

To the land of timeless Love.

Come, says he, Oh ! come -

My impudent ones –

Don't indulge in the smoke of religion –

Nor indulge in the illusion of spirit –

Let me take you – please – let me,

To the land of mindless Love.

Thus speaks Love time and again

To the alert and listening souls.

Once it whispered softly unto me –

And I did think of you.

Awaken, say I –

Before the call fades away –

Arise, say I –

Before the Beloved turns away.

398. DEATH

Death is the kiss of life.
Death not of the body –
but of the mind.
The mind that creates its own bondage.
The mind that invents its own freedom.
That mind quietly vanishes away –
when there is silence within and without you.
That mind peacefully drops away
when there is love within and without you.
That mind gracefully melts away
when passion burns bright within and without you.
In the cold embrace of that death
is the warm kiss of life.
In the soft ashes of that death
is the sweet perfume of life.

399. THE GIFT

I have come to sing,
The song of life.
I know not, how to teach.

I have come to love,
the diversity of life.
I know not, how to preach.

I have come to live,
A sane, healthy life.
I know not, how to lead.

I have come to enjoy,
The perfume of life.
I have no message for you.

My heart is a lotus.
These words are petals.
This is my gift unto you.

400. WORDS FAIL ME

Friends ask me with concern
what I am intending to do.
What is the state of being
which I am living in.

I know not how to tell them –
Living is the greatest action,
Alert and attentive, every moment.
Life has no states apart from it,
Life is life and I am that.

I know not how to tell them –
'I' and 'Mine' have long vanished
in the all consuming flame of life.
No one is there to feel any state.
No one is there to intend and plan.

Let the life tell its own story.
May friends be able to listen to it.
Let the silence sing life's own song.
May friends be able to listen to it.

401. HOMEWARD BOUND

Gone are the days of homely surrroundings
Gone are the embraces of loving companions
Gone is the day; dark horizons loom.
Stillness of night chills life in me.
Life has dipped the brush of time –
in dark sombre sorrow.
Days are heavy with sadness –
nights heavier with loneliness.
My heart is soaked in unshed tears.
Every breath is a gasp of agony.
The eyelids tremble; feet do falter –
the burden of sorrow, they cannot bear.
I am swept by the storm of sorrow –
death beckons me to the yonder shore.
I am homeward bound - though I know not the way.

402. AN AGELESS CHILD

An ageless child of eternity –

I walk through the countless aeons.

An egoless form of reality –

I march through the corridors of time.

A guileless infant of humility –

I play in choiceless simplicity.

A spaceless wave of emptiness –

I fade into timeless divinity.

A smokeless flame of compassion –

I melt into sorrowless serenity.

403. THE WHISTLING BIRD

The whistling bird is whistling away

With full abandonment

His arrival near the window

is an invitation

To look at him; to listen to him;

To watch his lyrical movements and grace !

Yes - my little darling - I love your music.

I Love You ! !

404. THE WHEEL OF OPPOSITES

Life is crushed constantly
under the wheel of opposites.
All are attracted by the majesty
of the eternal wheel.
No one pays attention
to the feeble cry of Life
All are attached to the grandeur
of the eternal wheel.
No one has any patience
to listen to the voice of Life.

Life gathered its withering strength
it raised its fainting voice.
And turning its poignant gaze on me
said with a sarcastic smile,
Aye, friend, pause for a while, Will you ?
Listen for a while, Will you ?
I stopped. I listened.
While Life thus whispered unto me.

Has not Man played enough
with the cruel wheel of opposites ?
Has not Man travelled enough
from matter to spirit and spirit to matter ?
Has not Man indulged enough
in vice and virtue, virtue and vice ?
Has not Man tossed himself enough
through the sensations of flesh and brain ?
Has not Man fled enough from Life
Regarding death his refuge ?
Has not Man clung enough to Life
Regarding death his enemy ?

405. LIFE IS SIMPLE

Has he found anywhere True Peace ?

Has he found anywhere True Love ?

Has he found anywhere True Poise ?

Has he found anywhere himself alive ?

If not, and I know, he has not –

Why not turn to me ?

Aye friend –

Why not turn to Life within you ?

Life is Simple.

Come away from illusory complexities.

Life is Peace.

Come away from unwarranted struggles.

Life is Purity.

Come away from self-created vices and virtues.

Life is eternity.

Come away from the dreams of past and future.

Life is Timeless.

Come away from the dread of annihilation.

Life is Love.

Come away from self-projected sins and crimes.

Life is Unity.

Come away from the yoke of opposites.

406. THE SMOULDERING HIMALAYAS

The snow clad peaks of the Himalayas
Had stood in blissful peace.
Century after century had witnessed them
Himalayas – The abode of silence.
Young and old from every corner of Earth
Had climbed them with reverence.
None had violated the peace and purity
All had added unto it.

But today Man has gone insane.
Man wants to conquer everything.
Man wants to possess mountains.
Man wants to dominate valleys.
Man wants to control rivers.
Man wants to rule oceans.
Man wants to own open skies.
Man wants to reign over space.

Man is intoxicated with the power of science.
Man is intoxicated with the power of mind.
He has decended upon the Himalayas.
He, in his frenzy, has smouldered them.
Guns are firing, tanks are rattling.
Human blood is flowing down the slopes.
None cares for those who collapse and die.
The dead lie frozen; covered by snow.

From north have poured in the invaders,
From south have rushed up the defenders.
Both are exchanging shots for shots.
Both are shedding blood for blood.
Smoke is winding up in huge circles.

Flames are leaping up higher and higher.
Icy cold north wind is moaning in agony.
The smouldering slopes are wailing piteously.

The ancient guard of peace and silence
Holds his peaks high in the heavens.
He looks upon Man with deep compassion.
His silence is pregnant with a challenge.
It is a challenge to the whole humanity.
Answer we must, now or never.
Now is the time to wake up and answer
If the 'now' escapes, there is no future.

Thus do the Himalayas question Humanity –

When shall ye learn the simple truth –
Hate never can eliminate hatred ?
When shall ye learn the simple truth –
War never can resolve any problem ?
When shall ye understand the simple fact –
Earth is neither Chinese; nor is she Indian ?
When shall ye understand the simple fact ?
Life is neither capitalist nor is it communist ?

407. THE TRIAL OF PATIENCE

While the storm rages wild
resulting in a dance of destruction,
While all the hearts groan and grumble
Under the pressure of fear and violence,
keep your cool, Oh ye, of deep faith
And nurse your tiny light of Love and compassion.

While brother fights brother blindly,
in the name of Religion or Creed
While neighbour destroys neighbour
in the name of money, sex and power
Keep your cool, Oh ye, of deep faith
And nurse your tiny light of Truth and Compassion

While representatives turn cruel rulers
Ignoring the dignity of Democracy,
While elections become a mockery
Discarding the frontiers of Deceney
Keep your cool, Oh ye, of deep faith
And awaken the simple people in humility.

While civil liberties are trampled upon
Or are bought and sold shamelessly,
While justice & judges are held hostages
By the power hungry politicians
Keep your cool, Oh ye, of deep faith
And rouse the people to their integrity.

Truth shall win, if we stand for it,
Voilence shall be defeated, if we face it fearlessly.
Hate shall be overcome, if Love holds its own.
And Many shall prevail, if He really wants to
Hence keep your cool, oh every person of faith
And stand up for Truth Love and Compassion.

408. LIFE SPROUTS AND SMILES

Life sprouts and smiles
In the hot ashes of death and destruction.

Hope blushes and blooms,
In the cremation ground,
Where half burnt ambitions lie scattered,
Where scorched desires groan inaudibly.

Faith flourishes and flowers
In the grave yard,
Where betrayals bark and browbeat

It is either a solemn mystery

or else

It is a meaningless scorn
On the lips of Madona Destiny.

409. FOR FELLOW PILGRIMS

Living is a pilgrimage
All of us are pilgrims
It is a pilgrimage
from incompleteness to completeness.
It is a pilgrimage
from imperfection to perfection.
It is a pilgrimage from fragmentation
to homogeneous wholeness
It is a pilgrimage from untruth to truth.
It is a pilgrimage from darkness to light.
It is a pilgrimage from the idea of death
to the fact to Immortality.

Every day is a step which has to be climbed.
Every relationship
is a field that has to be crossed.
Every movement is a lesson to be learnt.

The darkness of light is the nest for rest.
The light of the day
is nourishment for the voyage.

The space of silence is the nest for rest
The sound of speech is nutrition
for the journey

The emptiness of solitude
is the nest for rest
The movement of relationship
is nutrition of the pilgrimage.

410. INFINITY IS THE NATURE

Infinity is the nature of Space
Eternity is the nature of Time
Human race has tried to measure
them for its own convenience of
day to day living.
These measurements have not
and cannot condition Time & Space.
They are to be used in humility.
The awareness of the Eternity
And Infinity awaken the grace
of Humility.

411. SILENCE HAS SEALED THE SPEECH

Silence has sealed the speech.
Universality has devoured Individuality.
Fullness has gulped down the Emptiness.
Life has a pungent taste of Death.
Timelessness has swallowed the present,
along with the past and future.
One doesn't know how to describe
the quality and the nature of THAT
which is clothed
in the physical form of Vimal.

The sacred retreat
into the mysterious Aloneness
has over-powered the daily living.
Inter-action with persons around,
is reduced to a necessary courtesy
and a formality.
Meeting people is reduced
to paying the price of being born
in a human society.
Every sense of relatedness
is wiped out totally,
along with sense of responsibility
towards anyone and everyone.

412. LIFE IS THE MASTER

Life is the Master
Life is the Everlasting Master
The unmanifest is the essence
of Masterhood
The manifest is the visible Master
Eternal is boundless, is endless
To undestand It and be aware of It,
is paying our respectful homage to It.

It is possible to relate physically
to the manifest or the visible guru.
The material, visible world
vibrates with the energy
of the unmanifest.
We should get aquainted
with their forms, qualities and energies
We should receive, contain and utilise
their energies for our welbeing.

The very utilisation and sustenance
of these sacred energies is
expressing our greatfulness
to the Master.
Life is the Master
Life is the everlasting Master.

निर्मल एवं नीडर परिव्राजिका : विमला ठकार

विमला ठकार उच्चकोटि के मौलिक विचारक, भक्त एवं सन्त हैं। वर्तमान युग के इस ऋषि का जन्म 15 अप्रैल, 1921, रामनवमी के दिन बिलासपुर में हुआ। आपका बचपन वहीं - अपने मातामह श्री यादवरावजी भागडीकर के वहाँ - बीता। आपके मातामह अत्यंत सात्त्विक प्रकृति के गृहस्थ थे। उनके घर पूरे देश से उच्चकोटि के विद्वान, पंडित एवं सन्त महात्मा आते रहेते थे। स्वामी विवेकानंद भी वहाँ आये थे। बड़े महल में अमाप ऐश्वर्य के बीच सादगी में आप जीवन यापन करते थे। विमलाजी के पिताजी बलवंत (बापुसाहब) ठकार एवं माताजी चन्द्रिकाजी अत्यन्त सात्त्विक सहज सरल जीवन जीते थे। पिताजी महाराष्ट्र के अकोला शहर में वकील थे।

विमलाजी ने अपने पैरों पे खड़े होकर शाला-कॉलेज की पढ़ाई की। पूर्व एवं पश्चिम के दर्शनशास्त्र के विषयों के साथ M.A. की पदवी प्राप्त की। हिमालय में स्वामी रामतीर्थ ने जहाँ पार्थिव शरीर का विसर्जन किया उस स्थान पर निवास कर एकांत वास का अभ्यास किया। आसपास में कहीं कंदमूल मिल जाय, गंगाजल का सेवन, ओढ ने बिछाने के लिए एक कंबल और शिला पर अठारह घण्टे की ध्यानावस्था! इस प्रयोग के बाद एकान्त में रहती समाधि अवस्था के बदले लोगों के बीच रहती समाधि अवस्था में गुणात्मकता का फर्क समजा। लोकान्त में कैसे वह अवस्था अखण्ड रहती है वह सिद्ध किया।

विमलाजी विद्याभ्यास के काल में बाहर की मर्यादाओं को सम्हालकर अंतरजीवन में विहार करती रहती थी। टैगौर की कृति, शरदबाबु की नवलकथा की पढ़ाई के साथ-साथ सूफी सन्तो के जीवनचरित्र पढ़ना, उपनिषद की पढ़ाई करना चलता रहता था। गृहस्थ जीवन के प्रति उदासीनता बढ़ती गई तो दूसरी ओर तुकडोजी महाराज, दादा धर्माधिकारी, मा आनंदमयी, विनोबाजी, साने गुरुजी, जयप्रकाश नारायण - प्रभावति जी के साथ अन्तरग सम्बन्ध संपर्क बढ़ता गया। ऐसे सन्तो-महानुभावों के संग के कारण लोक निष्ठा के संस्कार बढ़ते गये। महात्मा गांधी, श्रीमद् राजचन्द्र, रामकृष्ण परमहंस, ज्ञानेश्वर वगैरह के जीवन दर्शन को आत्मसात् कर लिया। वेद-उपनिषद आत्मसात् होते गये।

विमलाजी की वाणी में यह महानुभावों के जीवन की उज्जवल झलक दिखती है। भूदान आन्दोलन में प्रवेश हुआ। समग्र भारत में दस सालों तक परिव्रज्या चली। हजारों की सभा में सर्वोदय दर्शन का मर्म समजाया। हजारों एकड़ भूमि का दान प्राप्त किया। बाद में पूरे संसार में बरसों परिव्राजक रहकर अध्यात्म जीवन की सौरभ फैलाई।

विमलाजी का संपर्क श्री जे. कृष्णमूर्ति जी के साथ 1956 ईसवी से बढ़ने लगा। विमलाजी की प्रतिभा एवं स्वयंप्रज्ञा प्रकट होने लगी। आत्मानुभव दशेन्द्रियों से छलक ने लगा। कविता के माध्यम से धारा बहती चली, जिसमें संगीत का माधुर्य एवं प्रसाद था।

विमलाजी से एक बार जे. कृष्णमूर्ति जी ने पूछा था, "Why don't you explode ? तेरा विस्फोट क्यूं नहीं होता ?"और वह हुआ। उसके बाद कुछ समय मौन-एकांत में जीवन व्यतित हुआ। भूदान आन्दोलन पीछे छूट गया। आबू पर्वत पर लम्बा निवास शुरु हुआ। जीवन सत्ता ने विमलाजी को अध्यात्म जिज्ञासुओं के लिए फिर से बोलने की प्रेरणा दी। जो आपने सहजरूप से निभाई। सिर्फ भारत में ही नहीं हॉलेन्ड, जपान, अमरिका, नेपाल, आस्ट्रेलिया और संसार के 55 से भी ज्यादा देशों में 40 से भी ज्यादा वर्षों की परिव्रज्या कर अपने चिन्तन की ज्योत पहुंचाई। अंग्रेजी, हिन्दी, मराठी, गुजराती, डच, फ्रेन्च, जर्मन, इटालीयन, नोर्वेजियन वगैरह कई भाषाओं में 300 से भी ज्यादा पुस्तकें प्रकाशित हुई। विमलाजी की वाणी प्रवचनों, प्रश्नोत्तरी, ज्ञानेश्वरी प्रवचन पारायण, वेद-उपनिषद, योगसूत्रों पर दिये गये व्याख्यान ओडियो/वीडियो के रूप में 2000 घंटो से भी ज्यादा हाल में उपलब्ध है।

भारत देश की विकट स्थिति में वे विचलित न होकर पुन: चैतन्य का संचार करने में आप लगी रही। सख्य-सहयोग-सहजीवन जीवन मन्त्रों के द्वारा मानव-मानव के बीच प्यार का सन्देश फैलाया। समाधिस्थ जीवन के अनेक आयाम उद्घाटित होते रहे। जीवन का एक छौर हंमेशा समाजकार्य के साथ सक्रिय रूप से जुड़ा रहा। विमलाजी अध्यात्म की अवधारणा को व्यक्तिगत मुलाकातों के उपरांत विविध सामयिकों, ग्रन्थों, शिविरों एवं परिव्रज्या के माध्यम से समजाती रही। जीवन मूल्यों के जागरण, और उसे जीवन में सक्रिय स्थान देने से ही देश-दुनिया का संकट समाप्त हो सकता है। अध्यात्म जीवन विज्ञान है जो जीवन को यथार्थ रूप में समजने और जीने में हमारी मदद करता हैं। जीवन का हर क्षेत्र साधना क्षेत्र है। जीवन की समग्रता को खण्ड़ों में विभाजित नहीं किया जा सकता। अध्यात्म पथ जीवन को सार्थक रूप से जीने की कला सीखाता है। व्यक्ति परिवर्तन और समाजपरिवर्तन की प्रक्रिया एक साथ चलती है। विमलाजी कहती हैं कि राष्ट्र की समस्याओं को भूलकर समाधि में पड़े रहना सार्थकता नहीं है। अध्यात्म में मानव विमुखता, समाजविमुखता नहीं है।

विश्ववंद्य अनोखे सन्यासी, नारीदेह में जी गये अवधूत 11 मार्च, 2009 फाल्गुन पौर्णमी के दिन आबू पर्वत पर विदेह हुए। विमल जीवन दर्शन में से प्रेरणा लेकर संसार भर के जिज्ञासु 'Friends of Vimala' के नाम से अनौपचारिक मिलते रहतें हैं। अपने अस्तित्व को उत्सव मानकर जीने वाले इस महामानव को प्रणाम।

आलेखन : **श्रेयस् कारीआ**

पूर्वसूरिओं का भावस्मरण ।

अ. संग्रह अथवा प्रकाशन ।

१. लाउ फ्रेन्केना
२. लीस फ्रेन्केना
३. ईन्दुताई टिकेकर
४. डॉ. प्रेमलताजी शर्मा
५. प्रभाबहन मरचन्ट
६. कैसरजी ईरानी
७. विष्णुभाई पंड्या
८. अरविंदभाई देसाई
९. डॉ. ज्योत्स्नाबहन शेठ
१०. ज्योर्जिया नित्सेन

ब. भाषान्तर ।

१. डॉ. गीताबहन परीख
२. बालकृष्णजी वैद्य
३. डॉ. अजीतजी फडणीस
४. डॉ. उर्मिलाजी शर्मा
५. पद्माताई बेडेकर
६. श्रद्धाजी सवाणी
७. निरंजनजी त्रिवेदी
८. भगवतीबहन चौहाण

क. त्रिमूर्ति ।

१. शिल्पा शाह
२. वीणा मांडलिया
३. अंजलि घूळघूळे

साथीओं का स्नेह स्मरण ।

अ. विमल प्रकाशन ट्रस्ट

करसनभाई पटेल, डॉ. वीरेन्द्र पटेल, दीप्ति कारीआ, केतन दवे ।

ब. सन्त ज्ञानेश्वर फाउन्डेशन

डॉ. प्रफुल्लभाई दवे, दर्शन शेठ, डॉ. सलोनी शाह, डॉ. वीरेन्द्र पटेल ।

पसायदान

आतां विश्वात्मकें देवें ।
येणे वाग्यज्ञें तोषावें ।
तोषोनी मज द्यावें ।
पसायदान हें ।

जे खळाची व्यंकटी सांडो ।
तया सत्कर्मी रती वाढो ।
भूतां परस्परें पडो ।
मैत्र जीवांचे ।।

दुरिताचें तिमिर जावो ।
विश्व स्वधर्मसूर्ये पाहो ।
जो जें वांछील तो तें लाहो ।
प्राणिजात ।।

वर्षत सकळमंडळी ।
ईश्वरनिष्ठांची मांदियाळी ।
अनवरत भूमंडळी ।
भेटतु भूतां ।।

चलां कल्पतरुंचे आरव ।
चेतनाचिंतामणींचे गांव ।
बोलते जे अर्णव ।
पीयूषाचे ।।

प्रसाद-दान

अब विश्वात्मक देव ।
इस वाग्यज्ञ से हों सन्तुष्ट ।
तुष्ट होकर प्रसाद-दान ।
दें मुझे यही ।।

कि खलों की कुटिलता छूटे ।
सत्कर्म में उनकी रति बढ़े ।
भूतों में परस्पर प्रगटे ।
हार्दिक मैत्र ।।

जाये दूरितों का तिमिर ।
विश्व में स्वधर्म सूर्य हो उदित ।
जो-जो चाहें वह करें प्राप्त ।
प्राणिजात ।।

बरसे सकल मङ्गल ।
ईश्वर निष्ठों का समुदाय ।
अनवरत भूमण्डल पर ।
यह देखें प्राणी ।।

कल्पतरु के उद्यान सचल ।
चेतना चिन्तामणि के गाँव ।
जो बोलते हुए अर्णव ।
पीयूष के ।।

चंद्रमे जे उलांछन ।
मार्तंड जे तापहीन ।
ते सर्वांही सदा सज्जन ।
सोयरे होतु ।।

किंबहुना सर्वसुखीं ।
पूर्ण होऊनि तिहीं लोकीं ।
भजिजो आदीपुरुखीं ।
अखण्डित ।।

आणि ग्रंथोपजीविये ।
विशेषी लोकीं इयें ।
दृष्टादृष्ट विजयें ।
होआवें जी ।।

येथ म्हणे श्रीविश्वेश्वरावो ।
हा होईल दानपसावो ।
येणें वरें ज्ञानदेवो ।
सुखिया झाला ।

ज्ञानेश्वर

चन्द्रमा जो अलाञ्छन ।
मार्तण्ड जो तापहीन ।
वे सबके प्रति सदा सज्जन ।
हों प्रिय सबके ।।

किम्बहुना सब सुखों से ।
पूर्ण होकर तीनों लोक ये ।
आदि पुरुष का भजन करें ।
अखण्डित ।।

और ग्रन्थोंपजीवी जन ।
लोक में इसके विशेष ।
वे दृष्ट - अदृष्ट फल पर ।
पायें विजय ।।

तब बोले श्रीविश्वेश ।
यही होगा दान प्रसाद ।
इस वर से हुए ज्ञानदेव
सुखी परम ।।

हिन्दी अनुवाद : **डॉ. उर्मिलाजी शर्मा**

श्री विमला ठकार

के वार्तालापों, प्रवचनों, संवादों की

ओडियो C.D.

एवं

विडियो D.V.D.

तथा गुजराती, हिन्दी, मराठी, अंग्रेज़ी भाषाओं में

प्रकाशित हुई पुस्तकें प्राप्त करने हेतु,

विस्तृत सूचिपत्र प्राप्त करने हेतु

संपर्क करें

विमल प्रकाशन ट्रस्ट

'विमल-सौरभ'

वाणीयावाडी, स्ट्रीट नं. १, राजकोट-३६० ००२ (गुजरात)

फोन / फेक्स : ०२८१-२३६५२७१

E-mail : vimalprakashantrust@yahoo.com

Cell phone : +91 99 255 29096

+91 98 254 16769

अमरित की बरखा

अहं तजो –
आतम भजो –
आतम जीवन का सत्व है ॥
ममता तजो –
समता भजो –
समता जीवन का धर्म है ॥
गुमान तजो –
निर्मान बनो –
वह मौन का महाद्वार है ॥
नेह अंजन नयनमें –
मैत्री दीपक हृदयमें –
चिर मुक्तिका यह द्वार है ॥
जीवन अमरित की बरखा –
समझ बूझ इसको जीना –
होगा परमे बेडा पार

विमला ठकार